## चन्द्रशेखर शास्त्री


प्रकाशक—ओझाबन्धु कार्यालय,

पटना।

प्रथमावृत्ति, १०००]　　सं० १९८१　　[मूल्य ॥)

तस्मै दरिद्रात्मने

# उद्देश्य।

जिस देशने एक दिन दरिद्रताको अपनाया था, जहांके दरिद्रोंके चरणो पर देशके बड़े बड़े राजमुकुट झुकते थे आज वही देश दरिद्रमहिमा भूल गया है। आजसे बहुत पहले सत्ययुगमे एक बार यह प्रश्न उठा था कि धर्म बड़ा है या धन। उस समय राजा हरिश्चन्द्रने इस प्रश्नका उत्तर बड़ी खूबीसे दिया था। उन्होंने राज्य दानमें देदिया, धनके पक्षपातियोंने उन्हे संताया उन्होंने पुत्रके साथ स्त्री बेची, फिर वे स्वयं बिके, इस प्रकार उन्होंने धर्मका पक्ष लिया। अन्तमें राजा हरिश्चन्द्र विजयी हुए। धनके पक्षपाती परास्त हो गये, उनका सिर झुक गया। राजा हरिश्चन्द्रको देवताओंने बधाई दी। पर आज हमारे देशकी वह दशा नहीं है। आज धर्म पर धनकी विजय हुई है, आज धर्म छोड़ा जा रहा है, धन नही। धनलिप्साके कारण देशने बुद्धि खो दी है, अपना बिराना उसे चीन्ह नही पड़ता। कर्त्तव्य अकर्त्तव्यका उसे ज्ञान नही है। यह कितनी परिणाम-भयदायी दशा है।

धर्म संसारका मूल है धन नहीं। धन संसारका फल है। धनके बिना भी संसार रह सकता है पर धर्मके बिना उसका एक क्षण भी रहना असम्भव है। पर आज यह स्पष्ट बात हम लोगोकी समझमें नहीं आती, अतएव हमलोग धर्मका पक्षपात छोड़कर धनके पीछे पड़े हैं। अविनाशी आत्माको भूलकर विनाशी शरीरकी रक्षाका प्रयत्न करते हैं। सभी प्रकारके कार्योंमें हम योग्यता नापते हैं धनके द्वारा। धर्म, कुल, विद्या आदिका महत्व हमारी दृष्टिमें नहीं-है। इसका फल भी प्रत्यक्ष है। मूलके दुर्बल होनेसे जैसे वृक्षकी स्थिति सन्दिग्ध हो जाती-है उसी प्रकार हमारी दशा हो गयी है। आज हम संसारके किसी भी कल्याणके भागी नहीं।

इसी बुरी धारणाको दूर करनेके लिए देशके कतिपय महानुभावोंने दारिद्रय-व्रत ग्रहण किया है, उन लोगोंने अपनी अगाध सम्पत्ति छोड़कर साधारण जीवन बिताना प्रारम्भ किया है। उद्देश्य है देश-वासियोंके हृदयसे धनकी महत्ताको दूर करना, धनके लिए धर्म नष्ट करनेके पापसे उन्हे बचाना।

वे धन्य हैं जो अपनी शक्तिका विनियोग दूसरोंके कल्याणके लिए करते हैं। उनका गुणगान आनन्द-दायी है, उससे हम लोगोका कल्याण हो सकता है। हमलोगोकी कलुषित आत्मा पवित्र हो सकती है, हम लोगोकी भ्रान्त धारणाएँ दूर हो-सकती हैं, हमारे कुसंस्कार दूर हो सकते हैं। इसी उद्देश्यसे दरिद्र कथा सुनानेका उद्योग किया है।

चन्द्रशेखर।

## दरिद्र बननेके लिए राज्य छोड़ा ।

भगवान् बुद्धदेवने राज्य छोड़ दिया, राज्यसुखोंको त्याग कर वे वनको चले गये। महाराणा प्रतापने अकबरकी मित्रता तुच्छ समझी, जिस कारण उन्हें जङ्गलोंमें भटकना पड़ा। गुरु गोविन्द सिंह, लो० तिलक, महात्मा गान्धी आदि पुरुषपुङ्गवोंने धनी होनेकी लालसा कभी नहीं की। योग्यता थी, अवसर था, चाहते धनी हो सकते थे, पर धनी होनेकी उन्होंने कामना तक न की। इसी प्रकार गेरीवाल्डी, मेट्सिनी, रोमीली, हावर्ड, वाल्स, विलियम टेल आदि अनेक पुरुषोंने पश्चिमके देशोंमें भी दरिद्र रहनेकी आकांक्षा प्रकट की है। दरिद्रतापूर्वक उन्होंने अपना जीवन

बिताया है, और धन पानेके साधनोंके रहते हुए भी उसकी उपेक्षा की है। इसी प्रकार सभी देशोमें कुछ लोग ऐसे होते हैं जो धनकी कामना नही करते। धनको सुखका साधन नही समझते।

सुखसे प्रेम और दु:खसे घृणा

सुख चाहना मनुष्योंका स्वभाव है। उसकी सारी ताकत तमाम कोशिशें सुखके लिए होती हैं। मनुष्य अपने जीवनको सुखके लिए रखना चाहता है। वह उस जीवनसे प्रेम करता है, उस जीवनसे सन्तुष्ट रहता है, जिस जीवनमे सुख होता है अथवा उसके सुखी होनेकी आशा होती है। यह सुखकी चाह केवल मनुष्योमे ही नही रहती, मनुष्य ही सुख चाहते हैं ऐसी बात नहीं है। अन्य प्राणी भी सुख चाहते हैं और दुखसे घबड़ाते हैं। पर पशु जातिका कोई प्रामाणिक साहित्य नही है, इस लिए उनके सम्बन्धकी बातें हमलोगोंको मालूम नही, पर लक्षणोंसे जाना गया है कि वे भी सुख चाहनेमें मनुष्योंसे कम नही है। उनके भी प्रयत्न सुखके लिये होते हैं।

इस ससारमे सुख और दु:ख दोनों मिले हुये हैं। ऐसा सुख जिसमे दु ख न हो, ऐसा दुख जिसमे सुख

न हो, इस संसारमे मिलना कठिन है। राजाके महलोंमें और निर्धन असहायकी कुटीमे सुख और दुख दोनो दिखायी पडते है। राजा अपने महलोमे बैठा हुआ सदा इस बातका प्रयत्न करता है कि उसके पास तक दु ख पहुंचने न पावे। दु खकी गरम गरम हवा उसको झुलसने न पावे! पर राजाके सारे प्रयत्न व्यर्थ होते हैं। कमल सा खिला हुआ उसका चेहरा भी

सुख दु खका सम्पर्क

कभी कभी मुरझा जाता है। चन्द्रमाके समान उसके मुखमण्डल पर भी दु खके मेघोका काला पर्दा पड ही जाता है। दरिद्रकी कुटी अरक्षित है, वहां किसीके आने जानेमे कोई रुकावट नहीं। दु ख उसका जीवन-सङ्गी है, कुटी निवासके साथही साथ दु.खने भी जन्म ग्रहण किया है। पर वहा सुख नही रहता यह बात नहीं है। वहां भी आनन्दकी मधुर हँसी दीख पडती है। कुटीरवासी निर्धनका भी मुखमण्डल कभी कभी आनन्दकी ज्योतिसे जगमगा जाता है इस तरह हम लोगोको ऐसी कोई भी जगह दिखाई नहीं देती, जहा केवल दु'ख हो या केवल सुख ही हो। हां यह बात अवश्य है कि कहीं सुखकी अधिकता है और

कही दु खकी, कहीं दिन रातमे दु·खकी काली घटाओ मे सुखके दर्शन हो जाते हैं और कही सुखकी गङ्गाके तीर दु·खकी गरम हवा बह जाती है। यह सुख दु खका मेल अच्छा है या बुरा इस बातके विचार करनेकी आवश्यकता नही, क्योंकि वह विचार निरर्थक है और अनावश्यक है। यह सुख दु खका मेल बहुत पुराना है और शीघ्र ही ये अलग होंगे इसकी भी कोई आशा नही।

जो इन्द्रियोंको अनुकूल जान पड़े वह सुख है और जो प्रतिकूल जान पड़े वह दु ख है। सुख दु खकी यही परिभाषा पण्डितोंने बतलायी है। इस परिभाषाके अनुसार सुख बाहरी पदार्थों पर अवलम्बित रहता है। वह पदार्थ जो इन्द्रियोको अनुकूल जान पड़े जिसकी प्राप्तिसे इन्द्रियाँ प्रसन्न हो सुखका हेतु समझा जाता है। उस पदार्थकी प्राप्ति मनमे जो एक प्रकारका आह्लाद होता है, मनकी जो एक प्रकारकी तृप्ति होती है उसीका नाम सुख है। उसी सुखके लिये मनुष्य उन पदार्थोंका संग्रह करता है जिन्हे वह अपने लिए सुखकारी समझता है। कोई किसी एक विशेष वस्तुसे

सुख दु ख क्या है

प्रसन्न होता है, कोई दूसरी वस्तुसे, अतएव जो जिस वस्तुको सुखकारी समझता है, वह उससे प्रेम करता है और जिस वस्तुसे उसका मन उद्विग्न होता है, जिस वस्तुकी प्राप्तिसे वह घबड़ा जाता है, वह वस्तु उसके लिये दुःखका हेतु है, अतएव वह उस वस्तुसे द्वेष करता है उससे बचकर चलता है। जिस तरह हो, उस वस्तुसे दूर ही रहनेका प्रयत्न करता है।

अपनी अपनी समझके अनुसार सुख दुःखकी वस्तुओंके भिन्न होने पर भी प्रायः सभी लोग दरिद्रताको दुःखका हेतु समझते हैं। दरिद्रता पापोंका फल है, दरिद्रका सम्मान कोई भी करना नहीं चाहता। दरिद्र, मनुष्य नहीं समझा जाता। मनुष्योंके अधिकार दरिद्रोंसे छीन लिये जाते हैं। दरिद्र मनुष्य अपनी चाह पूरी नहीं कर सकता। उसकी समाजमें पूछ नहीं होती। उसकी विद्या, बुद्धि, ज्ञान, योग्यता सभी निरर्थक है। दरिद्रता बहुत बड़ा दोष है और वह सब गुणोंको नष्ट कर देती है, इसी लिए मनुष्य दरिद्रतासे दूर रहनेका प्रयत्न करता है। यही साधारणतः लोगोंकी समझ है।

दरिद्रता पाप है

ऐसी दशामे जिन लोगोने जानबूझकर दरिद्रताको अपनाया है उनकी समझके विषयमे क्या कहना चाहिये। बुद्धदेवने इच्छापूर्वक राज्यका त्याग किया। ऐसा क्यो ? स्वय दुखी बनकर सुखकी सामग्रियोंको प्रसन्नता पूर्वक फेंककर क्या उन्होने बुद्धिमानीका काम किया ? क्या कोई ऐसा भी समझदार आदमी है जो दुखी होना चाहे या दुखी होनेका प्रयत्न करे ? संसार के इतिहासमे इस प्रकार जानबूझकर राज छोड़कर दरिद्र बननेवाले एक बुद्धदेव ही नही। ऐसे और भी

दरिद्रतासे घृणा और दरिद्रसे प्रेम

बहुत से है जिन्होने धनको छोड़ दिया है और वे अपने त्यागके कारण एक दिन भी दुखी नही हुए हैं। आश्चर्य तब होता है जब हम देखते है दरिद्रतासे घृणा करने-वाला ससार भी उन लोगोंसे घृणा नही करता जो धन छोड़कर दरिद्र हुए है। वह उन्हे अज्ञान नही समझता। यह एक विकट प्रश्न है। बुद्धदेवके पास सुखकी सब सामग्रिया थी, उन्होंने उन सामग्रियोका त्याग कर दिया, महल छोड़कर वे वनमे गये। इस तरह उन्होने सुखको छोड़ा और दु ख ग्रहण किया। पर लोगोंने इसके लिये बुद्धकी निन्दा नही की। यह

क्यो ? अभी कुछ दिनो पहले तक चित्तरञ्जन दास मोतीलाल नेहरू आदि सज्जनोके पास सुखकी सब सामग्रियां थीं। काफी आमदनी थी और प्रतिष्ठा भी थी। पर जानबूझकर इन सज्जनोने अपनी आमदनीका मार्ग छोड़ दिया, सुखकी सामग्रियोको हटा दिया। उचित तो यह था कि जनता इन्हे समझाती, बुझाती। इनसे कहती कि आप लोग जानबूझकर दरिद्र क्यो बन रहे है ? दुःख उठानेका प्रयत्न क्यो करते है ? पर ऐसा कुछ भी नही हुआ, एक मनुष्यने भी इनकी निन्दा नही की। जनताने इनके इस कार्य को मूर्खताका कार्य नहीं समझा। किन्तु इनकी प्रतिष्ठा और अधिक बढ़ गई। जिस नेहरू और दासको पहले कुछ ही लोग जानते थे और उन जाननेवालोंमे भी कुछ ही इनको सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे पर जिस दिन ये दरिद्र बने, जिस दिन इन्होने सुखकी सामग्रियोका त्याग किया उसी दिन समस्त भारतने इनको एक स्वरसे अपना नेता माना। पहलेकी अपेक्षा इनकी प्रतिष्ठा बहुत अधिक बढ़ गयी। बाजारोमे इनके चित्र बिकने लगे और घर घर उन चित्रोकी स्थापना हुई। इनके गुणगानकी कई पुस्तके प्रकाशित हुई। आज

समस्त भारत परिडत नेहरूजीको त्यागमूर्ति कहकर प्रसन्न होता है, श्रीमान् दासको समस्त देशने अपना बन्धु समझा और उसने "देशबन्धु" दास कहकर उनका सम्मान किया। आज भारतमें इनके प्रति एक ही भाव फैला हुआ है जो सम्मानका भाव है।

इसका अर्थ क्या ? जो जन समाज दरिद्रताको बुरा समझता है उसे सब दुखोंका मूल समझता है। दरिद्रोंसे घृणा करता है वही जानबूझकर दरिद्र बननेवालोंका आदर करना अपना उत्तम कर्तव्य क्यों समझता है। उचित तो यह था कि जानबूझ कर दरिद्र बननेवालोंकी समाजमें निन्दा होती, पर निन्दा तो दूर रहे उनकी बहुत अधिक प्रतिष्ठा बढ़ जाती है। यह क्यों ? इसका कारण सुनिए—इच्छाकी पूर्ति होनेका नाम सुख है और उस इच्छाकी पूर्तिमे सहायता देने वाले पदार्थ सुखकेसाधन हैं। किसीके मनमे यह इच्छा हुई कि हम मोटरकी सवारी पर घूमे। अपनी इस इच्छाकी पूर्तिके लिए उसने एक मोटर खरीदी या किराये पर ली। अब मोटर पर घूमनेकी उसकी इच्छा पूरी ईहु। इससे उसे सुख हुआ, मोटर इस इच्छाकी पूर्तिमे सहायक है और मोटरकी प्राप्ति रुपयेके बिना

सुखदु खका नही हो सकती, अतएव रुपया और
भीतरी रूप मोटर दोनो सुखके साधन हुए। यदि
मोटर पर चढ़नेकी इच्छा रखनेवालेके पास रुपये न हों
तो वह अपनी इच्छा उत्तमतासे कभी पूरी नही कर
सकता। अतएव, इस अपनी इच्छाके पूरी न हो
सकनेके कारण उसका मन सदा चञ्चल रहेगा। वह
अपनी इस कमीके कारण अपनेको असमर्थ समझेगा,
अपनेको छोटा समझेगा। इस उदाहरणसे सुखदुखके
विषयमे यह बात सिद्ध होती है कि जो मनुष्य अपनी
इच्छा की पूर्ति कर सकता है, जिस मनुष्यके पास
अपनी इच्छाओंको पूर्ण करनेकी शक्ति और साधन
हैं, वह सुखी है, और जो ऐसा नही है, जिसके मनमे
केवल इच्छाएँ उत्पन्न होती हो और वह उनकी पूर्ति
नहीं कर सकता हो, इच्छापूर्तिके साधन उसके पास
न हों तो वह दुखी है। अब दूसरी तरहसे विचार
कीजिये—ससारमे ऐसे भी अनेक मनुष्य वर्तमान हैं,
जिनके मनमे मोटर पर चढ़ने की इच्छा नही होती।
अतएव उन्हे मोटर मिलने का साधन न रहनेका दु ख
भी नही होता। मोटर पर चढ़ना और पैदल घूमना
इन दोनोमे वे कुछ भेद नही समझते, फिर उन्हें मोटर

पानेके साधनोंकी कमी होने पर भी उनका मन चञ्चल नहीं होता। वे इस कमीको कमी नहीं समझते। बात है भी यही ठीक, क्योंकि दुःख तो तब होगा, अपनी कमी तो तब मालूम पड़ेगी, जब ऐसी इच्छा उत्पन्न हो जो कि पूरी न की जा सके। जिस हृदयमें सदा ऐसी इच्छाएँ उत्पन्न होती हो जिनकी पूर्ति अनायास हो जाय तो उस हृदयका दुखी होनेका अवसर कैसे मिल सकता है। पर साथ ही उसे सुखका भी अनुभव नहीं होता। सुखका तो अनुभव तब हो जब किसी बातका अभाव मालूम पड़े और पुनः उस बातकी पूर्ति हो। उस अभावको दूर करनेके लिये कठिन प्रयत्न करने पड़ें। उसके लिये मनमें विशेष उत्सुकता हो। यह सब तभी हो सकता है जब मनमें कोई अजीब इच्छा उत्पन्न हो, जिसकी पूर्तिके लिये अधिक साधनोंकी आवश्यकता पड़े। जिस इच्छाकी पूर्ति अनायास हो जाय उससे कुछ विशेष सुख नहीं होता। प्रयागके रहनेवालोंको गङ्गास्नान करनेसे उतना सुख नहीं होता, जितना कि एक मद्रासी को। क्योंकि एकको गङ्गास्नानके लिए अधिक प्रयत्न नहीं करना पडता, उसे इसके लिये अधिक साधनोंकी

आवश्यकता नहीं पड़ती, पर दूसरेको इसके लिये बहुत प्रयत्न करना पड़ता है। उसको अपनी गङ्गा-स्नानकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये अनेक साधन एकत्र करने पडते हैं। यही कारण है कि इन दोनोंके सुख मे भी भेद होता है। राजकुमार दुर्योधन और युधिष्ठिर आदिको असली दूध पीनेमे वह आनन्द न होता होगा जो कि अश्वत्थामाको दूधके नामसे चावलकी लसी पीनेसे हुआ था। एक और बात है कभी कभी यह अनायास इच्छपूर्ति भी दुखदायक हो जाती है। जिसको अनायास अच्छी अच्छी चीजे मिलती है, कभी कभी वह उन चीजोंसे ऊब जाता है, फल यह होता है कि जिन चीजोंके लिए दूसरे उत्सुक रहते हैं, जी जानसे कोशिश करते है, उन्हीं चीजोंको वह हेय समझने लगता है। इन्हीं बातोंको देखकर विद्वानोंने यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि सुख बाहरी पदार्थ नहीं है। किसी वस्तु विशेषकी प्राप्तिसे हर आदमीको हर समय सुख ही होगा यह कोई बात नहीं है। जो राजसिंहासन किसीके लिए एक समय सुखकारी रहता है वही उसी मनुष्यके लिये समय बदलने पर दु खकारी हो जाता है। एक मनुष्य जिसको अच्छा समझता है

उसीको दूसरा मनुष्य बुरा समझता है ऐसी बातें हम लोग सदा देखते हैं, फिर किसी वस्तु विशेषमे सुख है यह बात कैसे कही जा सकती है। किसी वस्तुके धर्म मे तो फेर बदल नही होता। अग्निकी उष्णता तब तक दूर नही की जा सकती जबतक अग्नि वर्तमान है, पर विषयोमे, वस्तुओंमे यह बात नही है। राजमुकुट और राजसिहासनके लिए मनुष्य कितना प्रयत्न नहीं करता, कितने न करने योग्य काम नही करता, पर क्या राजमुकुट पाने पर वह सुखी होता है, क्या राज-सिंहासन पर बैठनेसे उन इच्छाओंकी पूर्ति होती है, जिन्हें उसने कल्पनाके द्वारा अपने हृदयमे स्थापित कर रखा है। क्या उसके हृदयकी चञ्चलता दूर हो जाती है? अपने राजमुकुटके छिन जानेका भय क्या उसको नही बना रहता? यदि हों, तो फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि राजमुकुट सबके लिए और सदाके लिये सुखकारी है।

यह समझना भूल है कि बाहरी पदार्थोंमे सुख है। किसीके मनमे एक प्रकारकी इच्छा उत्पन्न हुई और उसकी पूर्ति बाहरी पदार्थो से हुई। पर वह इच्छा पूर्ति, वह मानसिक शान्ति थोड़े ही देरके लिए होती

है, पुन. वही इच्छा उत्पन्न होती है और मन चञ्चल हो जाता है। जो वस्तु एक समय प्रिय और प्रार्थनीय होती है उसीसे द्वेप हो जाता है। वाहरी पदार्थों के द्वारा इच्छाकी पूर्ति हो जाना, सदाके लिए मानसिक शान्तिका वन जाना कठिन, असम्भव है। अत सुख वाहरी पदार्थ एव जो वुद्धिमान है वे सुखके लिए नहीं है दूसरा उपाय करते है। वे अपनी प्रकृति पर अधिकार स्थापित करते है, जिससे कि वे सदाके लिए सुखी हो जाते है। वह सुख है जो बड़े बडे राजाओंको भी नहीं मिलता। इसी सुखको शाश्वत सुख अविनाशी सुख कहते है। मानसिक चञ्चलता सदाके लिये दूर हो जाती है। किसी भी प्रकारकी कोई भी इच्छा नही रह जाती। सभी प्रकारके अभाव दूर हो जाते है। क्या यह वात राजाओंके लिए सम्भव है? क्या राजाओंके हृदयमे अभावकी तरंगें नही उठती? क्या उनका हृदय शान्त रहता है? जो प्रकृतिके दास बने हुए है, जिनके मनमे सदा अभावकी लहरियां उठा करती है वे क्या सुखका सुन्दर रूप देख सकते हैं? यथार्थ सुखी वे है जिन्होने प्रकृतिकी दासता छोड़ दी, उसपर अपना अधिकार कर

लिया है। जिनका हृदय शान्त और स्वस्थ है, जहा अभावका ज्ञान नहीं, वहीं सुख है। उसी महान सुख के लिये प्रयत्न करनेवाले समाजके आदर्श हैं। इनके कार्य, इनके चरित्र संसारवासियोंको मार्ग दिखलाते हैं। उनके धन और उनके अज्ञानको दूर करते है। भगवान बुद्धने राज्यका त्याग किया सुखके लिए. राज्य त्याग कर उन्होंने उस मार्गका ग्रहण किया जहा शाश्वत सुख प्राप्त होना है जहां समस्त इच्छाओ की समाप्ति हो जाती है।

इच्छाओंकी समाप्ति, अभावोंका अन्त, बाहरी पदार्थों की सहायतासे नहीं हो सकते। बाहरी पदार्थों की सहायतासे इनकी पूर्तिका प्रयत्न करना इन्हे बढाना है। इस सम्बन्धमे भगवान श्रीकृष्णने गीतामे कहा है,—

"न जातु काम' कामानामुपभोगेन शाम्यति।

हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभि वर्धते॥"

"कामनाओंकी तृप्ति, कामनाओंकी शान्ति बाहरी पदार्थोंके उपभोगसे नहीं हो सकती। वैसा करना उनको और बढ़ाना है। घी डालनेसे आगकी ज्वाला और बढ़ती है घटती नहीं है।" उपभोगके द्वारा इच्छा

की पूर्ति कुछ लोगोंकी समझमें हो जाती है। यदि उनकी बात मान भी ली जाय तो वह केवल इसी अंशमें मानी जा सकती है कि वह क्षणिक है, काल्पनिक है। भारत उस उपायको उत्तम नहीं समझता। धन बनकर सुखी होना भारतकी समझमें ठीक नहीं, वह प्रकृतिकी दासतासे मिले हुये क्षणिक सुखको सुख नहीं समझता, अतएव, वह उससे तृप्त भी नहीं होता। उसे चाहिये शाश्वत सुख, उसे वह सुख चाहिये जिसका कभी नाश नहीं, जिसके प्राप्त होनेसे सभी प्रकारके अभाव दूर हो जायँ। बाहरी पदार्थोंसे प्राप्त होनेवाला सुख अन्यसापेक्ष्य होता है। उसके लिये दूसरों पर अवलम्बित रहना पड़ता है। भारत उस सुखसे सन्तुष्ट नहीं, वह स्वायत्त सुख चाहता है और स्वायत्त सुखके लिये एक ही मार्ग है। वह है प्रकृति पर विजय पाना, प्रकृतिको अपने अधीन करना।

धनकी सहायतासे जिन लोगोंकी इच्छाएँ पूरी हुआ करती हैं वे अपनेको सुखी और सौभाग्यवान समझते हैं। उन्हें सोचने विचारनेका अवसर नहीं मिलता। दूसरोंके दुखोंके अनुभव करनेकी शक्ति उनमें नहीं रहती। सहनशीलता, दया, प्रेम आदि

गुण जो मनुष्य-हृदयको महान बनाते हैं, उनमे प्राय: वे गुण नही रहते। जिससे वे अपनेको एक दूसरी श्रेणीके जीव समझने लगते है इस हृदयकी क्षुद्रतासे उन्हे शाश्वत सुख नही मिलता, वे क्षणिक सुखको ही

सुखके साधनके सम्बन्ध की नासमझी

शाश्वत सुख समझते है, इसीमे प्रसन्न रहते है। जो लोग धनी नही है, जो धनकी सहायतासे अपने अभावोंको दूर करना चाहते हैं उनकी और बुरी दशा है। उनके हृदयमे केवल इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं और उनकी पूर्तिका साधन् कुछ भी नही होता। फिर भी वे सुखी होना चाहते हैं। बिना साधनके ही वे सिद्धि प्राप्त करना चाहते है, इसलिये उन्हे अनेक नीच उपायोका अवलम्बन करना पडता है। छल, कपट, खुशामद, धर्म बेचना, आत्म-गौरवको भूल जाना आदि बातें उनके लिए बहुत ही छोटी है। सम्भव है उन्हे सुख मिलता हो, सम्भव है वे अपनेको सुखी समझते हो। पर विचारवान् उनकी दशा देखकर बहुत ही दुखी होते हैं। वे क्षणिक सुख पानेकी आशामे हृदयकी महत्ता नष्ट कर देते हैं। मानसिक कोमलता, प्रेम, विश्व-बन्धुत्व आदि उत्तम और हृदयको महान

बनानेवाले गुणोंका बलिदान कर देते है। कितनी शोचनीय अवस्था है, कितनी दयनीय दशा है। इसीको कहते हैं "कांचके दाममे हीरा बेंचना।" क्या क्षणिक सुखके लिये आत्मगौरवका बेचना बुद्धिमानोंका काम है? अपने निजी सुखके लिए दूसरेको दुख देना, छल कपटमे दूसरोंका धन लेना, स्वार्थके लिए अपनी आत्माके विरुद्ध कार्य करना और बातें कहना क्या उत्तम काम है? पर दरिद्रोंको, जिनके पास धन नही, योग्यता नही, कोई गुण नही, इसी मार्गमे चलना पड़ता है। उनकी इस बुरी दशासे रक्षा होनेका कोई उपाय नही। धनी लोग इस बातका अनुभव ही नही कर सकते कि दूसरोंके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है। उनमे त्यागका मादा नही, उनमे मानवी हृदयके उत्तम गुणोंका विकाश नही। जो स्वयं दरिद्र है, उनमें कोई शक्ति नही, कोई बल नही, कोई गुण नही जो वे अपनी दशा सुधारे। वे धनियोंके हीन आश्रय लेनेके लिए विवश है और धनी उनसे घृणा करते है। वे उन्हें दुतकारते है और फटकारते हैं, उन्हें अपनी क्रीड़ाकी एक सामग्री समझते हैं, यह कितने आश्चर्य की बात है। एक मनुष्यका किसी मनुष्यको पशु

बनानेकी इच्छा रखना क्या मानवीजातिके लिए कलङ्क की बात नहीं है। क्षणिक सुखके लिए, ईश्वरीय गुणों को, स्वर्गीय भावोंको नष्ट कर देना क्या विशुद्ध मूर्खता नहीं ?

ऐसे लोगोंके उद्धारका उपाय केवल भगवान कर सकते हैं। इन पथभ्रष्टोंके लिए स्वयं भगवान ही आदर्श उपस्थित कर सकते हैं, वे बड़े दयालु हैं। अतएव मानव जातिके इस कलङ्कको दूर करनेके लिये किसी भाग्यवान्के हृदयमें वे अपनी ज्योति प्रकाशित करते हैं जिसके प्रकाशमें वह सब बातें यथार्थ रूपसे देखने लग जाता है। धनी और दरिद्र किस रास्ते जा रहे हैं ? धनियोंका क्या कर्तव्य है ? और दरिद्रोंका क्या कर्तव्य है ? ये बातें उसे साफ साफ दीख पड़ती हैं।

भगवान्के आदर्श से धनी दरिद्र बनते हैं

वह 'क्षणिक सुख और शाश्वत सुख में क्या अन्तर है' इस बातको जान लेता है। प्रत्येक मनुष्यकी मर्यादाका उसे ज्ञान हो जाता है। उसका हृदय एक अद्‌भुत ज्योति और विशाल महत्वसे पूर्ण हो जाता है। वह स्वयं सुखी बनता है और अपने साथ दूसरोंको भी सुखी बनाता है। वह आत्म-

पर-भेदको दूर करनेका सन्देश संसारवासियोंको देता है और स्वयं आदर्श बनकर उनलोगोंके सामने उपस्थित होता है। इस अपने प्रधान कर्तव्यके लिए वह बड़ेसे बड़ा भी त्याग कर सकता है और करता है। वह अपने को एक व्यक्ति नहीं समझता। वह अपने व्यक्तिगत सुखोंसे सुखी नहीं होता। वह अपने कलङ्कोंको दूर कर प्रसन्न नहीं होता। उसका सुख दुख व्यक्तिका सुख दुख नहीं, किन्तु वह अपने हृदयके भावोंको विशाल बनाकर एक राष्ट्रके रूपमें परिणत कर देता है, और राष्ट्रका सुख ही उसका सुख है, राष्ट्रका दुख ही उसका दुख है, राष्ट्रका कलङ्क दूर होना ही उसका कलङ्क दूर होना है। वह अपनेको राष्ट्रसे भिन्न नहीं समझता और राष्ट्रको अपनेसे भिन्न नहीं समझता। इसके सम्बन्धमें ईशावास्योपनिषद मे लिखा है।

"यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥"

जिसका स्व-पर-भेद दूर हो गया है, जो समस्त राष्ट्र और संसारको अपनेसे भिन्न नहीं समझता, किन्तु समस्त राष्ट्र और विश्वको अपनी आत्मा समझता

है उसे न तो कोई मोह है न शोक, क्योकि उसने अपनेको महान बना लिया है।

भगवान बुद्धसे लेकर जितने महापुरुष हुए है, वे सब इसी श्रेणीके हैं। उन सबोने अपनी आत्माको राष्ट्रकी आत्मासे मिला दिया था। उन लोगोंने शाश्वत सुखका सन्देश समस्त संसारको देना अपना कर्तव्य समझ लिया था। घृणा द्वेष आदि कुवृत्तियाँ उनके हृदयसे दूर हो गयी थी। अतएव उन्होंने त्याग किया था, समस्त ससारको त्यागका कर्तव्य बतलाया था। मानवी कर्तव्यका आदर्श उपस्थित किया था, प्रेमके महामन्त्रसे जनताको दीक्षित बनाया था। वे दरिद्र बने सत्यके लिए, उन्होंने राजसुखका त्याग किया जनताके लिए, फिर जनता यदि उनका आदर न करे, जनता यदि उनके महत्वोंको न समझे तो संसारके सामने अपनेको मनुष्य कहनेका उसे अधिकार रह जायगा?

घृणा हृदयका बुरा भाव है, यदि उसका उपयोग दरिद्रो और असमर्थो के प्रति किया जाय। जिस जातिके लोगोंमे दरिद्रों और असमर्थोंके प्रति घृणाका भाव उत्पन्न हो जाता है वह जाति पतित है, उसका

आत्मगौरव नष्ट हो गया है, उसने मनुष्यत्वको कलङ्कित किया है, ऐसा समझना चाहिए।

दरिद्रके प्रति घृणा अधमता है।

भारतका एक दिन था कि यहांके दरिद्र सर्वपूजित थे। उनके चरण बड़े बड़े राजाओंके द्वारा चुम्बित होते थे। रोम साम्राज्य के जब अच्छे दिन थे तब वहांके डिकेटर अपनी पद-मर्यादाकी ओर न देखकर कृषी आदिके द्वारा अपना निर्वाह करते थे। वे दरिद्रतासे अपना जीवन निर्वाह करते थे और समस्त साम्राज्यका शासन करते थे। दरिद्रतासे उनके सम्मानमें कोई बाधा नही होती थी। किन्तु इसे वे अपना गौरव समझते थे। जब तक रोममें यह भाव वर्तमान रहा, तब तक उसकी प्रतिष्ठा रही, तबतक संसारका वह आदर्श रहा, एक वीर साम्राज्य रहा, पर अभाग्यवश रोमनोंके हृदयसे वह भाव दूर हुआ। सोनेकी महत्तासे चौधिया कर उन लोगोंने दरिद्रोंसे घृणा करना सीखा। उसी दिन रोम साम्राज्यके पतनकी सूचना हुई और अन्तमे उसका अस्तित्व केवल शब्दोंमे रह गया।

इटली पराधीन हो गया था। इटलीवालोंका अपने देशसे प्रेम करना अपराध समझा जाने लगा

दरिद्र ही उद्धारक हैं

था। कई देशप्रेमी नवयुवक देश-प्रेमके अपराधके कारण नृशंस राज-कर्मचारियोंकी गोलीके शिकार हो चुके थे, दशा भयानक थी, धनके लोभसे देशद्रोह करनेवालोंकी कमी न थी। पैसा ही लोगोंके जीवनका आदर्श बन रहा था। पैसा मिलना चाहिए, पैसेके लिए बुरेसे बुरा काम किया जा सकता है। लोग दरिद्रताका माहात्म्य भूल चुके थे, उनके सामने मनुष्यत्वका कोई आदर्श नहीं था। उस समय महात्मा मेटूसीनी और वीर गेरीबाल्डीने भगवत्की प्रेरणासे दरिद्रताका व्रत ग्रहण किया। मनुष्यत्वका कलङ्क दूर करनेके लिए उन लोगोंने अपने व्यक्तित्व अपनी सुखभावनाका त्याग किया। छिपकर रहना, पैदल दूर दूरकी यात्रा करना, कई दिनों तक भूखों रहना, उन लोगोके लिए साधारण बात हुई। उन लोगोंके सामने बाधाएँ आयीं। क्षणिक सुखके प्रलोभनोने उन्हे इस मार्गसे डिगाना चाहा, पर वे अचल अटल रहे। जिन लोगोंने धर्मद्रोह और देशद्रोह करके रुपये पाये थे, जिन लोगोंने मखमली गद्दे, सुन्दर वस्त्र, वहुमूल्य गहनोंके लोभमें फसकर अपनी आत्माको वेंच डाला था

उन लोगोंने इन दरिद्र स्वदेशसेवकोंका उपहास किया, इन्हे उन्मत्त बताया, पागल बताया और आवाजें कसी, पर ये अटल और अचल रहे। जातीय महत्ता, स्वर्गीय भाव और ईश्वरीय ज्योतिसे अनुप्राणित इन वीर महात्माओंने इटलीका उद्धार किया, विदेशी गवर्मेंएटको इटलीसे उठा दिया और वहां जातीय शासन की सत्ता जमायी। वीर गेरीवाल्डीने दरिद्रपर जातीय महत्वसे उज्ज्वल इटलीके नवयुवकोंका एक दल बनाया और दलपतिका आसन स्वय ग्रहण किया। वह दल रणक्षेत्रमे पहुंचा और उसने परधनलोलुप आष्ट्रियनो को नीचा दिखाया। उन्हे अपने देशको लौट जानेके लिए बाध्य किया। जो एक दिन उन्मत्त कहे जाते थे जिनपर एक दिन तानेजनी होती थी आज उनके जयघोषसे इटलीका ही नही किन्तु समस्त भूमएडल का आकाश गूंज उठा। वह समय था कि गेरीवाल्डी यदि चाहते तो प्रसन्नतापूर्वक इटलीवाले उन्हे राजा बनाते पर उस दरिद्र महावीरकी महत्ता इसमे नही थी। गेरीवाल्डीने राजा बननेके लिए प्रयत्न नही किया था; किन्तु देशका दुख दूर करनेके लिए। अतएव उन्होंने राजर्षि विक्टर मैनुअलको वहांका राजा

बनाया और स्वयं खेतीके द्वारा वे जीवन निर्वाह करने लगे। राज्यकी ओरसे उन्हे मासिक वृत्ति देना निश्चित हुआ था, पर उन्होंने वह भी स्वीकार नहीं की।

दारिद्र्य व्रत ग्रहण करनेवाले महान हैं; क्योंकि उन्होने अपने त्यागमय उदाहरणोसे लोगोंके सामने आदर्श उपस्थित किया है। वैसे मनुष्य प्रत्येक देशके भूषण हैं। कभी कभी तो किसी किसी देशको वैसे महापुरुषोंकी नितान्त आवश्यकता होती है। भारतके जब अच्छे दिन थे तब यहां वैसे महापुरुषोंकी विपुलता थी। उनके आदर्शमय त्यागसे उस समयके राजा और प्रजा भी त्यागका महत्व जानते थे। वे भी प्रसन्नतापूर्वक अपने स्वार्थोंका त्याग कर सकते थे और करते थे। उस समयके गृहस्थ ब्राह्मणोका जीवन अद्भुत था, किसान खेतसे अन्न काटकर जब ले जाते थे, तब खेतमें गिरे हुए दानेको वे बीनकर अपना जीवन-निर्वाह करते थे। उसी अन्नसे अतिथिसेवा भी करते थे। स्वयंजात जंगली सागपातसे भी वे अपना जीवन निर्वाह करते थे। वे विश्वप्रेमी होते थे, उनकी शक्ति असीम होती थी, उनके प्रेममय आचरणोंका

दरिद्र महापुरुष हैं।

प्रभाव बाघ, सिंह आदि हिंसक जन्तुओंपर भी पड़ता था। वे भी अपनी हिंसक वृत्तिका त्याग कर देते थे। उन ऋषियोंके आश्रमोंमे बाघ और गौ परस्पर प्रेमसे रहते थे। यह कहानी नही है और औपन्यासिक कल्पना भी नही है, किन्तु यह ऐतिहासिक सत्य है। उनका यह त्याग, यह अद्भुत और उदार चरित्र उन्हें बहुत ऊँचा बना देता था। वे बड़े शक्तिमान समझे जाते थे, बड़े बडे राजा भी उनकी आज्ञा मानते थे, उनको महापुरुष समझते थे।

ऋषि शृंगके आश्रममे यज्ञ हो रहा था, वसिष्ठ आदि महर्षि उसी यज्ञमे शामिल हुए थे, राजा रामचन्द्रकी माताएँ भी वही गयी थी। अयोध्यामे रामचन्द्र राज्य करते थे, महर्षि वसिष्ठने ऋषि शृंगके आश्रमसे अष्टावक्रके द्वारा राजा रामचन्द्रको एक सन्देश भेजा था। उन्होंने कहा था "महाराज, अभी थोडे ही दिनोंसे आपको राजसिंहासनका भार मिला है, आपको मैं एक उपदेश देना चाहता हू, उस उपदेशके अनुसार काम करनेसे ही आप एक आदर्श राजा हो सकेंगे, प्रजाओंके हृदयमें अपना स्थान बना

प्राचीन भारतका दारिद्र्य प्रेम।

सकेंगे। आपको चाहिए कि आप सदा प्रजाओंके सुखस्वाच्छन्द्यके लिए प्रयत्न करें और प्रजाओंके मत विरुद्ध कोई भी काम न करें।" महर्षिके इस उपदेश-को, इस आज्ञाको, राजा रामचन्द्रने बड़े आदरके साथ ग्रहण किया, उसी समय उन्होंने प्रतिज्ञा की—"प्रजाके पालनके लिए राज्य, प्राण और इनसे भी प्रिय जानकी-का भी यदि मुझे त्याग करना पड़े तो उसके लिए मै सदा उद्यत रहूगा।" कुछ ही दिनोंसे ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई जिसने रामचन्द्रको अपनी इस प्रतिज्ञाके अनुसार काम करनेका अवसर दिया, और रामचन्द्रने जानकीका त्यागकर अपनी उस कठोर प्रतिज्ञाका पालन किया। यह कितना अद्भुत उदाहरण है, दारिद्र्य-व्रत ग्रहण करनेवाले महर्षि वसिष्ठकी कितनी बड़ी विजय है। प्रजा-मतके पालनका कितना अद्भुत उदा-हरण है।

आज भारतवर्षकी वह दशा नही है, यह एक दुखी, दरिद्री और सताया हुआ देश हो रहा है। आजके भारतवासी दरिद्रताका महत्व भूल गये है। धन और धर्म, इनमें कौन बडा है? इस प्रश्नका उत्तर भारतवासियोंकी ओरसे जो दिया जाता है वह लज्जा-

जनक है। आज भारतवासी धर्मकी अपेक्षा धनको ही बड़ा समझते हैं। खुशीसे धर्म छोड़कर धनके लिए हाथ फैलाते हैं। कोई मर्यादा नही रह गयी, कोई भी कर्तव्य नहीं रह गया, कर्तव्य है तो केवल 'धन कमाना। धनके लिए, भारतीय सस्कारो, भारतीय आदर्शोंका त्याग करना पड़े तो कोई चिन्ता नही। धन मिलना चाहिए। करोड़ो भारतीय भूखो मर रहे है, आधासे भी बहुंत अधिक भारतवासी मूर्खता और अज्ञानताके शिकार बन रहे है। पर किसीका इधर ध्यान नही, एक भारतवासी अपने सुखके लिए, कुछ थोड़ा बहुत धनके लिये, दूसरे भारतवासीको सता सकता है और सताता है। उसपर झूठे दोपारोपण कर सकता है और करता है। कितनी हीन दशा है, इस समयके भारतवासियोके आचार देखकर अनेक विचारवानोंके हृदयमे उनके मनुष्य होनेके विषयमे भी सन्देह होने लगा है। परस्पर सहानुभूति, परदुख-कातरता और प्रेम आदि मनकी उच्च वृत्तियोंको भारतीयोने खो दिया है, इनके लिए कोई आदर्श नही, आदर्श है धन, चाँदीके बर्तनोंमे खाना और मोटरकी

भारतका वर्तमान दारिद्र्यव्रत।

सवारी, देशसे और धर्मसे इन्हें कोई मतलब नहीं। इस प्रकारके भाव किसी भी देशको शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं। उसी नाशकी ओर भारत भी कुछ दिनोंसे बड़े वेगसे बढ़ रहा था, इसकी भी बड़ी बुरी दशा हो गई थी, इसकी यह दयनीय दशा भगवानसे देखी नहीं गयी और उन्होंने गान्धी, नेहरू, दास, टण्डन प्रभृति महापुरुषोंके हृदयमे दारिद्रव्रत ग्रहण करनेकी प्रेरणा की।

नीचे कतिपय ऐसे महापुरुषोंका नाम स्मरण किया जाता है जिन्होंने उत्साहपूर्वक दारिद्रय व्रत ग्रहण किया है और जो पूजित हुए हैं। पहले भारतीय दरिद्र महा पुरुषोंका उल्लेख किया जायगा, तदनन्तर कतिपय विदेशी महापुरुषोंका।

# दारिद्र्य व्रतधारी भारतीय महापुरुषगण

## ( १ )

### महर्षि विश्वामित्र

ये राजा थे, राजाओको जो सुख मिलते है वे सब इन्हे भी मिलते थे। आज्ञा पालनेवाले दास दासियोकी कमी नही थी, हाँ मे हाँ मिलानेवाले चापलूसोकी भी संख्या अधिक थी, खजाना भरा था, प्रजाओंके ऊपर शासन करनेका पूरा अधिकार था। विश्वामित्र इस सुखसे सुखी थे, वे अपनेको भाग्यवान समझते थे। इसी तरह बड़े आनन्दसे उनके दिन बीतते थे। पर एक ऐसी घटना हुई जिससे उन्हे यह सुख किरकिरा मालूम पड़ने लगा। उन्होने समझा कि इस सुखसे भी बढ़कर कोई दूसरा सुख है, इस शक्तिसे भी बढ़कर कोई दूसरी शक्ति है, जिसकी उपासनासे राजाओ की अपेक्षा भी बड़ी महत्ता प्राप्त होती है।

एक दिन राजा विश्वामित्र जङ्गलमे शिकार खेलने के लिए गये, बढ़ते बढ़ते वे अपने साथियोके साथ वसिष्ठके आश्रममे पहुचे। वसिष्ठने बड़े प्रेमसे

उनका सम्मान किया। उस सम्मान और सत्कारसे राजा विश्वामित्र और उनके साथी भी प्रसन्न हुए। वहीं उन्हे इस बातका अनुभव हुआ कि दरिद्र वसिष्ठकी अपेक्षा राजा होने पर भी हमारी शक्ति बहुत थोड़ी है, उसी समय उन्होंने कहा "धिक् बलं क्षत्रिय-बलं ब्रह्मतेजो बलं बलं" क्षत्रिय बल कोई बल नहीं, ब्रह्म बल ही बल है, ज्ञानबल और त्यागबलके सामने राजशक्ति कोई वस्तु नहीं। जिस समय उन्होने यह बात समझी उसी समय राज्यका त्याग किया और दरिद्र बनकर वे तपस्या करने लगे। उन्होंने अपने आचरणोंसे लोगोंको यह बतलाया कि जो उपदेशक बनना चाहता हो, जो मनुष्योंका सुधार करना चाहता हो, उसे सबसे पहले अपने स्वार्थका त्याग करना चाहिए। उसे अपना धन, अपना ऐश्वर्य, दूसरोंके सुखके लिए लगा देना चाहिए। विश्वामित्रने ब्रह्मबल प्राप्त करनेके लिए घोर तपस्या प्रारम्भ की। उनके तपोबलसे ब्रह्मलोक तक कांप गया। उन्होंने अपने तपोबलकी शक्तिसे एक नई दुनिया बनायी। एक चाण्डालको यज्ञ कराया और उसे सदेह स्वर्ग भेजा। इसी प्रकारके अनेक अद्भुत काम उन्होंने किये। राजा

## भगवान बुद्धदेव।

राजा शुद्धोदनके एक ही लड़का था, उसका नाम बुद्धदेव था, जो पहले सिद्धार्थ कहा जाता था। अपने पिताके बाद वही एकमात्र राज्यका अधिकारी था। उसे एक युवराजको जो सुख प्राप्त होने चाहिएँ वे सब प्राप्त थे। सिद्धार्थ प्रसन्न था, सुखी था। दुःख किसको कहते हैं, दुःखसे मनुष्योंका क्या सम्बन्ध है, दुःखी मनुष्यके प्रति दूसरोंका कुछ कर्तव्य है कि नहीं आदि बातोंका उसे कुछ ज्ञान नहीं था। उसने अपनी ही अवस्थाके समान सबको समझ रखा था। एक दिन वह घरसे बाहर निकला। रास्तेमें उसने देखा कि कई लोग एक आदमीको उठाये लिये जा रहे हैं, उनके

पीछे कई स्त्री पुरुष रोते चिल्लाते जा रहे हैं। सिद्धार्थके लिए यह एक नई बात थी। उसने किसीको रोते नही देखा था, उसने अपने साथियोसे पूछा कि यह सब क्या है? उसे सब बातें मालूम हुई। वह आगे बढ़ा, कुछ दूर आगे जाने पर उसने एक मनुष्य देखा, जो बहुत बूढ़ा था, रोगी और दुर्बल था। सिद्धार्थके लिए यह दृश्य भी नया था। इसका भी पता अपने साथियोसे उसने लगाया। उसे मालूम हुआ कि संसारके प्राणियोंकी यही अवस्था है। सभीको रोग होता है। सभी बूढ़े होते हैं और सभी मरते है। सिद्धार्थने पूछा कि हमे भी रोग होगा, हम भी बूढ़ेहोंगे और हम भी मरेंगे? साथियोंने कहा, हां। सिद्धार्थ चुप हो गया। उसकी सवारी आगे बढ़ी, उसने एक मनुष्यको देखा कि भगवा वस्त्र पहिने हुए था। सिद्धार्थने ऐसे मनुष्यको भी पहले नही देखा था। उसने पूछा यह कौन है? साथियोंने बतलाया कि यह संन्यासी है और सांसारिक दुखोंसे बचनेके लिए इसने यह वेष धारण किया है। सिद्धार्थने अपनी सवारी लौटा ली, वह आगे न जा सका। घर आने पर रास्ते की घटनाओ पर उसने विचार करना प्रारम्भ किया।

उसके पुराने विचार एकदम डांवाडोल हो गयें। उसने निश्चय किया कि जब इतने लोग दुखी है, तब एक हमारे सुखी होनेसे क्या होगा और हम सुखी है यह बात भी कैसे कही जा सकती है। हम भी तो रोगोके शिकार होगे, हम भी तो बूढ़े होंगे, इन विचारोके कारण वह राजसुखका विरोधी बन गया। इस सुखको उसने क्षणिक सुख समझा और वह अपना कर्तव्य निश्चय करनेके लिये विचार करने लगा।

बुद्धने राजसिहासनका त्याग कर दिया। स्त्री, पुत्र, बन्धु बान्धव आदिका त्यागकर वे बनवासी हुए। उन्होने कठिन तपस्याकी और सब दु खोसे छूटनेका उपाय ढूढा और वे उस उपायका प्रचार जनतामे करने लगे। दु खसे छूटनेके लिए जिन साधनोंकी जरूरत है बुद्धने उन सब साधनोंका जनतामे प्रचार किया। बुद्धके त्याग, तपस्या और ससार-कल्याण-साधनकी इच्छाको देखकर लोग उनके अधीन हो गये। उनके उपदेशके अनुसार चलने लगे। भगवान् बुद्धदेव अपने प्रयत्नमे सफल हुए। उनके प्रयत्नसे सांसारिक दु ख दूर हुए, मनुष्यने मनुष्यपर प्रेम करना सीखा, हृदयकी बुरी वृत्तियां नष्ट हुई। प्रकृतिकी अनिवार्य्य घटना मृत्यु

के भयसे बुद्धदेव जनताको न छुड़ा सके, पर उनके प्रयत्नसे जनताका शारीरिक रोग, मानसिक रोग दूर हो गये।

बुद्धदेव स्वय सुखी हुए और पृथिवीके एक तृतीयांश निवासियोंको उन्होंने सुखी बनाया। क्या राजा सिद्धार्थका ऐसा सम्मान हो सकता था? क्या राजा सिद्धार्थ इतने लोगोंके हृदयाधिष्ठाता हो सकते थे? संसार आज भी बुद्धदेवका आदर करता है, उनके त्यागकी, उनकी परदुःखकातरताकी प्रशंसा करता है। राजा सिद्धार्थ पृथ्वीके राजा थे और भगवान् बुद्धदेव हृदयके राजा हैं, कहिए कितना अन्तर है। इतने बडे सम्मानके लिए, इतने बड़े सुखके लिए, इतने बड़े लोकोपकारके लिए, क्या राज्य त्याग करना उचित नहीं है?

---

## ( ३ )

## महाराणा प्रताप

इन्होंने राज्यका त्याग नहीं किया था, फिर भी ये त्यागी समझे जाते हैं। त्यागियोंमे इनका बड़ा ऊंचा

आसन है। इन्होंने संन्यास धारण नहीं किया था, पर ये स्वदेशप्रेमी संन्यासी कहे जाते हैं। मुगल सम्राट अकबरका जमाना था। अकबर अपनी कूट नीतिके लिए प्रसिद्ध था। उसने भारतवासियोंके सामने प्रलोभनोंका जाल बिछा दिया था। उस जालमें देशके बड़े बड़े राजा-महाराजा एक एक करके फसने लगे। धर्म और समाजकी मर्यादा छोड़कर लोग मुगल सम्राट अकबरके साले और ससुर बनने लगे। उस समय देशके राजाओंका यही आदर्श था। लोग आपसमें होड़ लगाकर बादशाहके चरणोंमें अपनी बहिन और लड़की समर्पित करते थे। इसके बदलेमें जागीर और अकबरके दरबारमे ऊंची ऊंची नौकरियाँ उन्हे मिलती थीं। इन्हीं जागीरों और ऊंची नौकरियोंके लोभमें पड़कर देशके धर्मरक्षक राजा महाराजा ऐसे रोंगटे खड़े करनेवाले निन्दित काम करते थे। पर महाराणा प्रताप इस मोह जालमे न फंसे, वे जानते थे कि सम्राट अकबरका कृपाभाजन न बननेसे बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़ेंगे, राज्यसुख ही नहीं, सम्भवत. राज्य भी खोना पड़ेगा। पर उन्होंने धर्मरक्षाके लिए इन सब आपत्तियोंका सहन वीरता-

पूर्वक स्वीकार किया। देशप्रेमी वीर राजपूत योद्धाओंको साथ लेकर उन्होंने शक्तिशाली सम्राटकी सेनाका सामना किया। वे राजधानी छोड़कर जङ्गल जङ्गल मारे फिरे, कई हज़ार अपने प्रिय सैनिकोंका बलिदान कलेजा थामकर उन्होंने देखा, पर वे अपने कर्तव्यसे बिचलित न हुए। आजीवन वे कष्ट उठाते रहे, पर उन्होंने धर्मकी रक्षा की। उनका सिद्धान्त था "जो हठ राखै धर्मको, तेहि राखै करतार।" यह सच है कि उन्होंने राज्यका त्याग नही किया, उन्होंने घर बार नही छोड़ा, स्त्री पुत्र नही छोड़ा, पर उन्होंने अपना स्वार्थ छोडा जो घरबार छोड़नेकी अपेक्षा अधिक महत्व रखता है। उन्होंने अपने आचरणोंसे, अपने कार्योंसे, लोगोंको यह शिक्षा दी—राज्य धर्मके लिए है, आत्मगौरवके लिए है। धर्म और आत्म-गौरवकी रक्षाके लिए राज्यका त्याग करना चाहिए, न कि राज्यके लिए। सांसारिक सुखके लिए धर्म, आत्मगौरव तथा कुलमर्यादाका त्याग करना चाहिए। महाराणा प्रतापके इस आदर्शसे देशमे एक नये जीवन का आविर्भाव हुआ था, एक नया प्रकाश उत्पन्न हुआ था, जिस प्रकाशमे देशने अपना स्वरूप देखा,

अपना वर्तमान कर्तव्य देखा और आगेका अपने लिए मार्ग निश्चित किया।

---

( ४ )

## गुरु गोविन्द सिंह

सिक्खजाति अपनी वीरताके लिए प्रसिद्ध है। युद्धमें उसकी दृढ़ता अद्भुत है, वह अजेय है। उसकी कृतज्ञता, उसका भ्रातृप्रेम, उसकी कार्यदक्षता, एक-से एक बढ़कर हैं। इस प्रसिद्ध सिक्ख जातिका संगठन गुरुगोविन्द सिंहने किया था। इस जातिका मूलमत्र देशप्रेम और धर्मप्रेम पर बलि हो जाना है। चिलेनवालाके युद्धक्षेत्रमे इस जातिकी वीरताके सामने अग्रेजोंकी वीरता फिट्ट हो गई थी। सिपाही-विद्रोहमे सिक्ख जातिकी वीरताने अंग्रेजोंके छक्के छुड़ा दिये थे, किसी किसी तरह अंग्रेजोंने अपनी रक्षा की थी। अफगान युद्धमे सिक्ख जातिकी ही वीरतासे अंग्रेजोंकी सम्मान-रक्षा हुई थी और मिसरके युद्धमें अंग्रेजोंकी विजय सिक्खोंकी वीरताका ही फल है। इस सिक्ख जातिका संगठन गुरु गोविन्दसिंहने भारतके बड़े गाढ़े

दिनोमे किया था। उस समय अविचारी मुसल्मान बादशाहोंसे भारत दुखी था, धर्मप्राण भारतवासी व्याकुल थे। धर्म और देशकी यह दुरवस्था देखकर गुरु गोविन्द सिंहका हृदय कांप गया। हिन्दु-मुसल्मान द्वेपसे दोनो जातियोंका नाश शीघ्र ही हो जायगा, यह बात उन्होंने जान ली। उन्होंने निश्चय किया कि इस अनिष्टको दूर करनेके लिए इन दोनो जातियोमे मजबूतीके साथ प्रेमबन्धनका स्थापित करना आवश्यक है। इस बातका निश्चय करके उन्होंने सिक्ख जातिको, सिक्ख धर्मको, एक नया रूप दिया। सिक्ख धर्मके आदि प्रवर्तक गुरु नानकने परलोक और एकेश्वरवादको प्रधानता देकर इस धर्मकी स्थापना की थी। लौकिक विषयोका उसमे कोई स्थान नही था। उसी सिक्ख धर्मको गुरु गोविन्द सिंहने एक नया रूप दिया। उन्होने सिक्ख धर्मको ऐहिक कल्याणका भी साधन बनाया। उन्होंने कहा—"धर्ममें कोई भेद नही, हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण, सिक्ख, धर्मसे सभी एक है, सभी समान हैं।" इस उपदेशके अनुसार स्वयं गुरु गोविन्दने अपना आचरण बनाया, तदनन्तर अनेक हिन्दू और मुसल्मान

उनके इस धर्ममें दीक्षित हुए। हिन्दू-मुसल्मानका भेद छोड़कर वे सिक्ख नामसे अपना परिचय देने लगे; भोजन संबन्धी छूआछूतका भेद उन्होंने मिटा दिया। दीक्षाके दिन वे सिक्खोंको एक साथ बैठकर भोजन कराते, फिर वे स्वयं भोजन बनाकर सिक्खोंको खिलाते और सिक्खोंका बनाया स्वयं खाते थे, इस प्रकार सिक्खोंके हृदयसे दूसरोंका छूआ हुआ अन्न खानेकी घृणा दूर हो जाती।

गुरु गोविन्द सिंहके जीवनका प्रधान उद्देश्य सिक्ख जातिको उन्नत और सुखी करना था। दिन रात वे इसी चिन्तामें मग्न रहा करते थे। वे स्वयं निष्काम कर्मयोगी थे। अपने सुख, अपने धन, अपनी उन्नतिकी चिन्ता उन्होंने कभी नहीं की थी। सिक्ख जातिके कल्याणके लिए उन्होंने अपने सुख-स्वाछन्द्यका त्याग किया था। इसी कारण सिक्ख जाति उनके नामसे मर मिटनेको तैयार है। गुरु गोविन्द सिंहकी इच्छाको पूर्ण करनेके लिए सिक्ख वीर अपने प्राणोंकी आहुति देनेके लिए सदा तैयार रहते थे। रणक्षेत्रमें संकटके समय वे गुरु गोविन्द सिंहका जय जयकार करते और नये बलसे बलवान होकर शत्रु संहार

करनेमें जुट जाते थे। धार्मिक भेद दूर करनेके लिए गुरु गोविन्दने जो आत्मत्याग, जो भ्रातृप्रेमका आदर्श दिखलाया उससे अनेक हिन्दू-मुसल्मान आपसमें सदाके लिए भ्रातृप्रेममें बँध गये। इस जातीय एकता-से दिल्लीका बादशाही तख्त हिल गया। बादशाह इस एकताको देखकर चिन्तित हुआ। उसने सोचा जब हिन्दू और मुसलमान मिल गए, दोनोंने धार्मिक विद्वेष हटा दिया, फिर किसकी सहायतासे मैं अत्याचार कर सकूंगा। पर अभाग्यवश किसी हत्यारेके हाथसे गुरुगोविन्द सिंहकी मृत्यु हो गई। भारतकी आशा जाती रही, हिन्दू-मुसलमानमे जो प्रेमभाव स्थापित हुआ था वह इस एक झटकेसे टूट गया। भारतके बुरे दिन आये, भारतमें द्वेषकी आग पुन बड़े जोरोंसे धधकने लगी। हिन्दू और मुसलमान दोनोंने मिल-कर जिस व्रतका साधन किया था वह व्रत खण्डित हुआ, जिस उद्देश्यको पूर्ण करनेके लिए गुरुगोविन्दने आत्मत्याग किया था, वह उद्देश्य पूरा न हो सका।

वीर सन्यासी "गोविन्द" एक बार फिर भारतमें अपना मन्त्र फूंक दो। फिर भारतमें अपने संजीवन मन्त्रका प्रचार कर दो, मृतप्राय भारतको एक बार

पुन. जगा दो, चाहे तो तुम जहां हो वहीसे भारतको आत्मत्यागका महत्व बतला दो। वीर संन्यासिन्! तुम भारतके थे और भारत तुम्हारा था, तुमने भारतको वीरता और संन्यास दोनों की शिक्षा दी थी। तुमने भारतको धार्मिक असहिष्णुता और भेद दूर करनेकी शिक्षा दी थी। आज भारत तुम्हारी उस शिक्षा, तुम्हारे उस आदर्शकी राह देख रहा है। तुम्हारे सिक्ख आज भी वर्तमान हैं पर उनका कोई आदर्श नहीं है, उनको आदर्शका ज्ञान कराओ। सिक्ख वीर हैं पर त्यागी नहीं, संन्यासी नहीं, तुम एक बार उन्हे संन्यास और त्यागका महत्व बतला दो।

---

(५)

## लोकमान्य तिलक।

अंग्रेजी पत्र "लीडर"के सम्पादक मि० चिन्तामणि ने अपने एक व्याख्यानमे कहा था कि तिलक कोई व्यक्ति नहीं थे, पर वे एक संस्था थे। संस्था और व्यक्तिका जो सम्बन्ध है, वह प्राय सभीको मालूम है। व्यक्तिके विचार, व्यक्तिके कार्य, सर्वदा सर्वमान्य

नही होते क्योकि उनमे व्यक्तिगत मनोविकारोकी छाप लगी रहती है। जिस व्यक्तिके मनमें, जिस प्रकारके भाव होंगे, जो बुराई या भलाई होगी उन सबका प्रतिबिम्ब उसके विचारो और कार्यों पर भी अवश्य पड़ते हैं। ऐसे विचार एकदेशी होते है और वे इसी कारण सर्वमान्य नही होते। भय, स्वार्थ आदि कारणोसे संम्भव है कि कुछ लोग वैसे विचारो और कार्योकी प्रशंसा करे पर यथार्थतः उनका उसपर विश्वास नही होता। वे उन विचारो और कार्योंको अपने लिए लाभकारी नही समझते। संस्थाके विचार और कार्य इससे भिन्न होते है। सस्थाका विचार किसी व्यक्ति विशेषका नही होता, वह जनताका होता है, वह खास किसी मनोविकारसे उत्पन्न हुआ नही होता उसमे संकीर्णताके भाव नही होते, अतएव, वे सर्वमान्य होते हैं। जनता उन विचारोको अपने विचार समझती है और उनसे अपने कल्याणकी आशा रखती है। संस्थाका स्वार्थ सर्वसाधारणका स्वार्थ होता है, संस्था के विचार सर्वसाधारणके विचार होते हैं। व्यक्तिके विचार और कार्य वैसे नही होते।

लोकमान्य तिलक एक संस्था थे व्यक्ति नही। इस

वाक्यका अर्थ अब स्पष्ट हो गया। जो सज्जन लोकमान्य तिलकको संस्था बतला रहे हैं उनका तात्पर्य यह है कि लोकमान्यने अपना व्यक्तित्व जनताके रूपमे मिला दिया था। लोकमान्य जो सोचते थे वह जनताके लिए, जो करते थे वह जनताके लिए, उनके विचारो और कार्योंपर व्यक्तिगत और मनोविकारोंकी छाप नहीं होती थी। उनके विचारोंमे जनता अपने विचारोका प्रतिबिम्ब देखती थी, उनके कार्योंसे अपना कल्याण समझती थी, क्योंकि तिलकने अपनेको जनतामे लीन कर दिया था। तिलक तिलकके हृदय से नही सोचते थे किन्तु भारतके हृदयसे, तिलक तिलककी दृष्टिसे नही देखते थे किन्तु भारतकी दृष्टिसे, तिलक मूर्तिमान भारत थे। फिर भारतकी बात माननेमे भारतवासियोको एतराज ही कौन सा हो सकता है? तिलकके कार्य, तिलकके जीवनकी घटनाएँ, इन बातोंके उज्ज्वल प्रमाण है।

१८७९ ई० से लोकमान्य तिलकका व्यवहारिक जीवन आरम्भ होता है। उसी वर्ष उन्होंने एल, एल, बी० की उपाधि प्राप्त की थी। इस समयके भारतवासी जो कालेजकी शिक्षा समाप्त करके बाहर निकलते

हैं, उनका जीवन वड़ा ही विचित्र होता है। उनके सामने यह विकट प्रश्न उठता है कि अब मैं क्या करूँ? जीवनकी मधुर लालसाएँ उनको अधीर बना देती हैं और वे दिनों दिन उलझनोंमें फंसते जाते हैं। लोकमान्यके विषयमें यह बात नही थी। शिक्षा समाप्त करतेही ये कार्यमें लग गये। इनका कार्य था देशवासियोंमें शिक्षाका प्रचार करना। आगरकर तथा चिपलूणकरकी सहायतासे एक हाई स्कूलकी स्थापना उन्होंने की। इस सत्कार्यके लिए अपनेको अनुभवी समझनेवाले कुछ आलसी व्यक्तियोंने तिलक और उनके साथियोका उपहास किया। पर वे लोग अपने उद्योगमें डटे रहे; फल यह हुआ कि तिलकका दल धीरे-धीरे प्रबल होने लगा। १८८४में दक्षिण शिक्षा-समितिकी स्थापना हुई और उसके दूसरे ही वर्ष फर्ग्युसन कालेज खोला गया। उस कालेजमे लोकमान्य स्वयं अध्यापकका काम करने लगे। गणित, विज्ञान और संस्कृतकी शिक्षा तिलक स्वयं देते थे। चार वर्षोंतक लोकमान्यने उस कालेजमे अध्यापकका काम किया। पुन. एक विषयमें अपने अन्य साथियोंसे मतभेद हो जानेके कारण उन्होने उस कालेजसे अपना संवन्ध तोड़

दिया। मतभेदका विषय था "कालेजके लिए सरकारी सहायताका लेना"। तिलक कहते थे यदि सरकारी सहायता ली गयी तो जिस उद्देश्यसे इस कालेजकी स्थापना की गई है वह उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा। एक तो सरकार जो सहायता देगी वह बहुत ही थोड़ी होगी और उस थोड़ी सहायताके बदले गवर्न्मेन्ट इस-पर अपना अधिकार कर लेगी। पर उनके साथियोंने यह बात न मानी वे सरकारसे संबन्ध जोड़नेके लिए व्याकुल थे। इसलिए अपने सिद्धान्तोका दृढ़तासे पालन करनेवाले लोकमान्य तिलकने उस संस्थासे सबन्ध तोड दिया। पर उनका शिक्षाप्रेम कम नही हुआ। कालेजसे सबन्ध तोड़कर उन्होंने एक ला क्लास (Law class) खोला। उसके अध्यापक तिलक स्वय थे, पर कुछ दिनोके बाद राजनीतिक झमेलोमे फँस जानेके कारण तिलकका यह उद्योग भी रुक गया।

तिलकके समान लोकोत्तर पुरुषोके सहयोगी बहुत नही होते। तिलक देशको वह मार्ग दिखाते थे जो उसके लिए आवश्यक था, जहाँ उसे जाना था, पर सर्वसाधारणकी बुद्धि वहाँ नही पहुचती थी। सर्व-

साधारण उसे अपने लिए अप्राप्य समझता था। तिलकने पहले ही समझ लिया था कि हमलोगोंको क्या दुःख है तथा उसे दूर करनेका क्या उपाय है, पर यह बात और लोगोंकी समझमें नहीं आती थी। तिलकने लोगोंको समझानेका प्रयत्न किया पर स्वार्थ, भय और नासमझीने लोगोंको समझने नहीं दिया। जब तिलकने सोचा कि सर्वसाधारणको शिक्षा देनेकी आवश्यकता है। इसी विचारसे प्रेरित होकर उन्होंने मराठीमें "केसरी" और अंग्रेजीमें "मराठा" नामके पत्र निकाले। तिलकने इन पत्रों द्वारा ऐसा वायुमण्डल तैयार करना प्रारम्भ किया जिससे लोग निर्भीक देशसेवी बनें। इन पत्रोंके द्वारा तिलक देशवासियोंको राजनीतिकी शिक्षा देने लगे। देशवासी जो चाहते थे वह उन्हें मिला। अतएव शीघ्र ही केसरी और मराठाका प्रचार बढ़ा। इन पत्रोंको स्वयं तिलक लिखा करते थे। जो देशकी आवश्यकता है, देशवासियोंके लिए जो उपयोगी है, वही बात तिलक लिखा करते थे। अपने इस आदर्शका उन्होंने दृढ़ताके साथ पालन किया। इसके लिये उन्हें सदा कष्ट भोगना पड़ा। वे सदा शासकोंके कोपभाजन बने रहे। अन्तमें

उन्हें छ वर्षों तक देशके बाहर माडलेमे रहना पड़ा। यह भी भारतके लिए अच्छा ही हुआ। वहां लोकमान्यको अवकाश मिला और ये इस अवकाशमे "गीतारहस्य" के समान ग्रन्थरत्न लिखनेमें समर्थ हुए। इस पुस्तकमे न केवल तिलककी विद्वत्ताका ही प्रकाश है किन्तु यह पुस्तक देशवासियोंको पथप्रदर्शक है। भगवान् श्रीकृष्णका क्या तात्पर्य है यह बात बहुत दिनोंके बाद देशवासियोंका इस पुस्तकके द्वारा मालूम हुई।

तिलकजीको देशवासियोंने मांडलेसे लौट आनेपर वर्ष गाठके उपलक्ष्यमे उनके सम्मानके लिये लाख रुपयेकी थैली भेंट की। लाख रुपये कम नहीं होते। लोकमान्यने यह थैली ले ली, पर अपने लिए नहीं, किन्तु देशकार्यके लिए और देशकार्य ही मे उन्होंने इसका उपयोग किया।

लोकमान्य तिलकका जीवन साहस, धीरता, दृढ़ता, त्याग और तपस्याका जीवन है। उनके पास धन आया, उन्होंने उसे देशको दे दिया। उन्होंने कमाया देशको दिया। अन्त समयमे उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति देशको दे दी। अपने पुत्रोंके लिये कुछ भी न

रक्खी। तिलक चाहते तो केशरी, मराठा और प्रेसका स्वत्व अपने पुत्रोंके लिए छोड़ सकते थे और ऐसा करना न्याय्य था. उचित था, पर उन्होंने तो अपनेको देशका समझा था, फिर अपनी सम्पत्ति वे देशको क्यों न देते।

---

## महात्मा गान्धी

इस समय महात्मा गांधीका युग वीत रहा है। गांधीके अनुयायी तो सभी अपनेको वतला सकता है, पर गांधीका विद्वेषी यदि अपनेको कोई कहे तो देशवासी उसे देशद्रोही समझते हैं। अतएव जो गांधीसे भीतर ही भीतर द्वेष भी रखते हैं वे भी कार्य क्षेत्रमें गांधीका नाम लेकर उपस्थित होते हैं, अपना कार्यक्रम गांधीके द्वारा अनुमत वताते हैं। गांधीके विरोधमें यदि कोई एक भी वात कहे तो जनता उसकी वात सुननेके लिए तैयार नहीं। देशवन्धुदास भारतके एक वड़े नेता हैं। उन्होंने कांग्रेससे कुछ अलग कुछ मिलकर एक स्वराज्य दल नामका एक दल वनाया है, और उस दलके नेता स्वयं श्रीयुत दास महोदय हैं।

श्रीयुत दास अपने दलके सिद्धान्तोका प्रचार करते हुए मद्रास प्रान्तके नगरमे पहुचे, वहां उन्होंने अपने व्याख्यानमे एक बात कही जिससे गांधीपर थोड़ा आक्षेप होता था, इसका परिणाम यह हुआ कि समूचे देशने दासका एक स्वरसे विरोध किया और श्रीयुत दासने अपनी बात वापस फेर ली। इसी प्रकार इस समय भारतमे ऐसा कोई भी व्यक्ति नही जो गांधीके खिलाफ कहे और भारतीय जनता उसका विरोध न करे।

गांधीजी भी उन्हीमेके एक बैरिस्टर हैं जो इस समय अनेक देशमे दीख पड़ते है, जो तरह तरहके मुकद्मे बनाते हैं। जिनके जीवनका आदर्श ऐहिक सुख है। गांधीजी भी बैरिस्टर थे। इनकी आमदनी भी अच्छी थी। प० मदनमोहन मालवीयने एक बार गांधीजीकी आमदनी १२ हजार माहवार बतलायी थी। आमदनी कम न थी। गाधी भी सुखी थे, कोट पैंट पहनते थे, अंग्रेजोंमें खूब मिले हुए थे।

अपने एक गुजराती मुवक्किलका मुकदमा लेकर ये दक्षिण अफ्रिका गये। वहा जाकर ये कुछ दिनो तक रहे। गांधीको वहां इस बातका अनुभव हुआ कि

यहांवाले भारतीयोंका अपमान करते हैं, ये भारत-वासियोंको सताते हैं। गांधीने भारतवासियोंका पक्ष लिया। अपनी समूची आमदनी उन्होंने छोड़ दी। ये कङ्गाल हो गये। देशवासियोंके लिए इन्होंने कितने कष्ट उठाये इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। महात्मा गांधीने सत्याग्रहकी घोषणा और स्वयं उन्होंने सत्याग्रह किया। इस सत्याग्रहके कारण इन्हें कई बार जेल जाना पडा, अनशन अर्द्धाशन आदिके कष्टोंका तो कहना ही नहीं है। गांधीका परिश्रम सफल हुआ, इनकी तपस्या पूरी हुई। वहांकी सरकारसे इनका समझौता हुआ और ये अफ्रिकासे भारत लौट आये।

भारतकी राजनीतिक दशाका इन्होंने अध्ययन किया। ये अपनेको स्वर्गवासी गोखलेका शिष्य बतलाते हैं। अर्थात् नरमदलके राजनीतिक ये अपनेको मानते थे। इस कारण लोकमान्यकी नीति इन्हें पसन्द न आती थी। गांधीजीका अंग्रेजी गवर्नमेंटकी न्यायपरतापर पूरा विश्वास था। पर पंजाबके हत्याकाण्डसे इनका वह विश्वास जाता रहा। गांधीजी नरमदलके हैं इसमे सन्देह नहीं, पर ये पट्टेदार नरमदलिया नहीं हैं, इनके सामने धर्म आदर्श है, गांधीजी

धर्मकी रक्षा करेंगे, उस धर्मकी रक्षाके लिए राजनीतिके मैदानमे जानेकी जरूरत होगी तो गाँधीजी वहां भी खुशीसे उपस्थित रहेंगे। गवर्नमेंटके विरोधकी आवश्यकता होगी तो गाँधीजी वह भी करेंगे, शब्दोंसे और कार्योंसे भी। यही गाँधीजी और अन्य गरमदलके राजनीतिकोंकी नीतिमें अन्तर है।

गाँधीजीने जब देखा कि भारतीयोंके साथ गवर्नमेंटने न्याय नहीं किया, खिलाफतके सम्बन्धमे भी भारतीय मुसलमानोंके मतोंकी उपेक्षा की गयी, तब गाँधीजीने असहयोगकी घोषणा की, और यह असहयोग भी अहिंसात्मक असहयोग। नयी बात थी, किसीको विश्वास न था, यह स्वर्गकी नीति जमीनपर कैसे वरती जायगी, यह सतयुगका सिद्धान्त कलियुगमे कैसे पनपेगा। पर गाँधीजीके आत्मबलने उसे पनपाया, गाँधीजीकी नीति सफल हुई, भारतके नौजवानोंने अहिंसात्मक असहयोग करके दिखाया। एक बुद्धके बदले गाँधीजीने अनेको बुद्ध पैदा कर दिये।

इस समय गाँधीजी जेलमे हैं। समूचा भारत बाहर है, अनेक नेता बाहर हैं। जो लोग असहयोगके जमानेमें उसे अव्यवहारिक बतलाते थे, उससे देशकी

उन्नतिमें बाधाकी चीख मचाते थे, वे भी आज बाहर हैं, काफी मैदान है, पूरा अवसर है कि वे अपनी नीतिको फैलावें और भारतका कल्याण करें। वे जोर भी लगा रहे है, पर कोई उनकी बात नहीं सुनता।

यह गांधीका महत्व है। गाधीके त्यागने, गाधीकी सर्वहितैपिताने गांधीको इतने ऊँचे पदपर पहुचाया। आज भारत ही नही अमेरिका और जापान आदि भी गांधीकी पूजा करते है। आज गांधी दरिद्र है पर उनका पद वडे वड़े सम्राटोसे भी ऊँचा है, आज गांधीकी बात श्रद्धासे माननेवालोंकी जितनी संख्या है उतनी जनसख्या किसी जीवित दूसरे मनुष्यकी नही है, यह बात एक विदेशी विद्वानने कही है।

# दारिद्र्य-संहारी विदेशी महापुरुषगण

## ( १ )

### सर सामुयल रोमिली ।

अंग्रेज जाति आज सभ्य कही जाती है, आज यह न्यायी के नामसे अपना परिचय देती है। अंग्रेज कहते हैं कि हमारी जाति कानूनके आदर्श पर चलती है, उसने अपनी मनोवृत्तियां कानूनके अर्पित कर दी हैं। यद्यपि ये बातें अतिरंजित हैं, पर असत्य नही। हा, उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भमे अंग्रेज जातिके यहां जो दण्डव्यवस्था थी उसे देखकर कोई भी इस जातिको विना वर्वर कहे नही रह सकता। उस समय इस जातिकी कानूनी पुस्तकोंमें ऐसी अनेक धाराएं थी जिनमें प्राणदण्ड दिया जा सकता था। यदि कोई छोटा बच्चा भी उस धारामें आ जाय तो वह भी प्राण-दण्डके दण्डसे नही बच सकता था। यदि कोई लडका किसीके बागसे एक फूल तोड ले तो वहभी जेल भेज दिया जाता था। इसी प्रकार और भी अमानुषिक

दण्डव्यवस्था थी। रविवारके दिनको छोड़कर सदा वहां फांसीके खम्भे गड़े रहते थे। केवल एक रविवारके दिन ही फांसी देनेवाले जल्लादोंको फुरसत मिला करती थी। सोमवारके दिन फांसी देना बड़ा उत्तम काम समझा जाता था।

यह न समझिये कि एक फांसीका दण्ड ही कठोर दण्ड था, इसके अतिरिक्त और भी बड़े ही भीषण-दण्ड दिये जाते थे। कभी कभी वहांके न्यायमूर्ति जज अपराधीके लिये घोड़ेके पैरमे बांधकर घोड़ा दौड़ानेकी आज्ञा देते थे। इस आज्ञाके अनुरूप घोड़ा दौड़ा दिया जाता था, अपराधी उसके पैरमे बंधा रहता था। घोड़ेके साथ वह घसिटाता जाता था, इससे उसका समस्त शरीर छिन्न भिन्न हो जाता था। कभी कभी बकरोंके समान अपराधी व्यक्तिके शिर काट लेनेकी आज्ञा दी जाती थी। जीते जी जला देनेका भी दण्ड दिया जाता था। इतने ही दण्डके प्रकार थे यह न समझिये, किसी अपराधीके लिये आज्ञा होती थी कि उसका पेट फाड़ डाला जाय और पेटके भीतरकी लादी-गूदी निकाल ली जाय। कभी कभी टिकठी पर अप-राधी चढा दिया जाता था और ढेला पत्थर मारकर

उसका प्राण निकाल लिया जाता था। कभी कभी जज साहबकी आज्ञासे अपराधी घुमाया जाता था और एक आदमी उसे बेंत मारता जाता था। इसी प्रकार उसके प्राण हरण किये जाते थे। इसी प्रकारकी और भी अनेक दण्डकी रीतियां थी जो मनुष्य नामधारी करते और जिससे राक्षस भी लज्जित होते थे।

इन अमानुषिक व्यापारो पर किसीकी भी दृष्टि नही पडती थी, कोई भी इन्हे बुरा नही समझता था। ऐसी दशामे कोई इनके विरुद्ध आवाज उठावेगा यह कैसे सम्भव हो सकता है। सामुयल रोमिली उत्पन्न नहीं हुआ होता तो इनके विरुद्ध कोई आवाज भी नहीं उठाता और न मालूम कव तक और कितने अपराधी यमयातना भोगते। सामुयलने इन दण्डोके विरुद्ध आवाज उठायी और आजीवन वह इसके लिए लड़ता रहा।

रोमिलीके पिता फरांसी प्रोस्टेन्ट थे, वे कैथोलिक गवर्नमेंटके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर लण्डन चले आये। इन्हींके समान और भी कई स्त्री पुरुष कैथोलिक गवर्नमेंटके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर देश त्यागी वने हुए थे, ऐसे देशत्यागी प्राय लण्डनमे

आकर रहते थे। रोमिलीके पिताने एक फरांसी स्त्रीसे ब्याह किया जो इन दिनों लण्डनमे रहती थी, सामुयल अपने भाई बहनोंमें सबसे छोटा था, सामुयल छोटी ही अवस्थामें एक फरांसी स्त्रीको सौंपे गये। यह स्त्री भी सामुयलके पिताके समान कैथोलिक गवर्नमेंटके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर लण्डन आयी थी। इन्होंने ही रोमिलीको बाल्यावस्थाकी शिक्षा दी थी। इनका हृदय बड़ा ही कोमल था, बड़ा ही दयालु था। इन्हीके साथ के कारण रोमिलीका हृदय भी कोमल और दयालु हो गया था, वह दु खियोंका दु ख देखकर व्याकुल हो जाता था और साथ ही उनके दुख दूर करनेके लिए तय्यार हो जाता था।

घरकी शिक्षा समाप्त करके रोमिली स्कूलमें भरती हुए। उन दिनों स्कूलके शिक्षक बडेही विचित्र होते थे, उनकी प्रकृति अद्भुत होती थी, वे प्रेमपूर्वक पढ़ाना नहीं जानते थे, जानते थे केवल लड़कोंको मारना, आवश्यक अनावश्यक सदा बेंत फटकारना। वे लोग लड़कोंके दण्ड देनेकी नयी नयी रीतियां निकाला करते थे। रोमिली जब स्कूलमें गया और वहांके मास्टरोंकी क्रूरता जब इसने देखी तब इसे उन लोगोंसे घृणा हो

गयी, यह उन लोगोंका विरोधी बन गया। मास्टरोंकी क्रूरता दूर करनेकी तो इसमे शक्ति थी नहीं, पर इस विद्वेषका यह फल हुआ कि थोड़ी अंग्रेजी सीखकर इसने स्कूल छोड़ दिया और पिताके व्यवसायमे सहायता देने लगा। उसके पिता जवाहिरोंका व्यापार करते थे। रोमिलीने हिसाब आदि लिखनेका काम अपने हाथमे लिया। इस काममे इसे काफी अवसर मिलता था, इस अवकाशका उपयोग इसने ग्रीक और लैटिन सीखनेमे किया। इस प्रकार दो तीन वर्ष बीत गये। इसी समय रोमिलीके जीवनमें एक ऐसी घटना हुई जिसने इसके जीवनकी गति बदल दी। इसके किसी सम्बन्धीने मरनेके समय अपनी समस्त सम्पत्ति इसे दे दी। इस प्रकार रोमिलीको डेढ़ लाख रुपये मिले। इस धनप्राप्तिके कारण रोमिलीके पिताने रोमिलीको वकील बनानेका दृढ़ निश्चय किया। पिताके इस विचारके अनुसार रोमिली १८७८ ई०में "ग्रेज इन" में भर्ती हुए और नियत समयपर बारिस्टर होकर निकले और बारिस्टरी करने लगे।

बारिस्टर मण्डलमे इनकी प्रसिद्धि तो शीघ्र ही हो

गयी पर लाभकी दृष्टिसे ये अच्छे बारिस्टर न हुए, क्योंकि ये दण्डविधानका संस्कार कराना चाहते थे। वहाँ पहुंचते ही इन्होने अपना आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। कानूनके नामपर जो राक्षसी कार्य होते थे उनका इन्होंने प्रबलताके साथ विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। रोमिलीके इस आन्दोलनसे वहांके लोग बिगड़ खडे हुए, वे रोमिलीका और कुछ नुकसान तो नही कर सकते थे, हां इन लोगोने इस बातका उद्योग किया जिसमें रोमिलीकी बारिस्टरी चलने न पावे। पर प्रतिभाका प्रकाश किसीके रोके नही रुक सकता, किसीके छिपाये नही छिप सकता। लोगोने बहुत प्रयत्न किया कि रोमिलीकी बारिस्टरी न चलने पावे पर उनका प्रयत्न असफल रहा, उसका कुछ फल नही हुआ, उनकी कीर्ति धीरे धीरे फैलने लगी, धीरे धीरे उनके यहाँ मुकद्दमा भी अधिक आने लगे। इसका फल यह हुआ कि १७९८ ई० में मिस गार्बेट नामकी एक उच्चकुलकी स्त्रीसे इनका ब्याह हुआ।

सन १८०६ ई० मे ये सलिसिटर जनरल बनाये गये। उसी समय ये हाउस आफ कामसके मेम्बर हुए और इन्हे सरकी पदवी मिली। कामंस सभामे

जानेपर उन्हे अपना अन्दोलन चलानेका अच्छा अव-सर मिला। वे कामस सभाकी हर बैठकमे कानून सशोधनका उद्योग करने लगे। अमानुषिक दण्ड व्यवस्थाको कानूनी पुस्तकोसे हटा देनेका उद्योग करने लगे। वे स्वयं सुखी थे और साधारण प्रयत्नसे और सुखी हो सकते थे, पर उधर उन्होने ध्यान नही दिया। वे सदा दु खियोके दु'ख दूर करनेके लिए लडते रहे, इङ्गलैंडके कलङ्क दूर करनेका प्रयत्न करते रहे। इसके लिए उन्होंने अपना तन मन और धन तीनोंका व्यय बडे उत्साहसे किया।

उनकी वक्तृता बड़ी मर्मस्पर्शिनी होती थी। दण्ड व्यवस्थाके सम्बन्धमे उन्होंने कहा था—"नरहत्या तथा अन्य कोई अमानुषिक कार्योंका विवरण पढ़नेसे मेरा हृदय भयभीत हो जाता है, न्यूगेट जेलमे जो मनुष्य जीते जी जला दिये गये हैं उनका विवरण पाकर मुझे रातको नींद नही आती, यदि किसी तरह नीद आ भी जाती है, स्वप्नके बीचही मे वह उचट जाती है, स्वप्नमें मैं उन्ही आधे जले हुए विकट मूर्तियोंको देखता हू। इन मूर्तियोंको देखते ही मेरी नीद खुल जाती है और मैं उठ जाता हूं। नरहत्या, वेत्राघात, जलाना

आदिका दृश्य मुझे याद आने लगते हैं और मैं इतना भयभीत हो जाता हूं कि नीद ही नहीं आती। रातका जागना मेरे लिये भयावह और सोना भाग्यहीमे नही है इस कारण मैं प्रतिदिन भगवान्से प्रार्थना करता हूं कि वे ऐसी व्यवस्था करें जिससे रातको पूरी नींद आवे।"

इन व्याख्यानोंका पहले तो कोई फल नहीं हुआ, कुछ लोगोंने रोमिलीका उपहास किया, कुछ लोगोंने साधारण भावसे सुन लिया। पर थोड़े दिनोंके बाद रोमिलीके प्रयत्नका फल होने लगा, इनकी हृदय हिला देनेवाली वक्तृताएँ पार्लमेंटके मेम्बरोपर प्रभाव डालने लगीं। अँग्रेज जातिके कई दयालुओंने रोमिलीका पक्ष ग्रहण किया। रोमिली पहले एक थे, अब उनके कई साथी हो गये। पार्लमेटमें विकट आन्दोलन होने लगा।

अँग्रेज जाति कोई नयी बात जल्दी नही करती। यह इसका स्वभाव है। अतएव रोमिली अपने आन्दो-लनका फल जीते जी नहीं देख सके।

सन १८१८ ई० मे उनकी स्त्री बीमार पड़ी; रोमि-लीने स्वयं उनकी सेवा की, पर कुछ फल न हुआ,

उनका परलोकवास हो गया। रोमिलीका प्रेमी और दयार्द्र हृदय यह आघात न सह सका। रोमिलीका भी इसी आघातसे शरीरान्त हो गया। पर उनका आन्दोलन जीवित रहा और उसका फल हुआ। इङ्गलैण्डकी उन सब धाराओंका संशोधन हुआ जिनमे अमानुषिक दण्डकी व्यवस्था थी, यद्यपि प्राणदण्ड और वेत्राघातका दण्ड हटा नही, पर वह बहुत कम हो गया।

(२)

## विलियम टेल

पहले स्विटजर्लेण्ड आष्ट्रियाके अधीन था, आष्ट्रियाका एक गवर्नर वहाका शासन करता था। उसके अत्याचार से स्विटजर्लेण्डके वासी बड़े व्याकुल हो गये थे। जब वहांवालोको यन्त्रणा असह्य हो गयी तब उन लोगोने आष्ट्रियाके पराधीनता पाशसे मुक्त होनेका प्रयत्न किया। उस प्रयत्नके अधिनायक विलियम टेल थे। इन्हीके प्रयत्न, इन्हीकी अद्भुत शक्तिसे स्विटजर्लेण्ड वालोको स्वाधीनता मिली। यह वीर पुरुष सचमुच

स्वदेवप्रेमी था, स्वदेशका अपमान इसके लिए असह्य था। स्वदेशका और स्वदेशवासियोंका कष्ट दूर करने के लिए यह अधिकसे अधिक दुःख उठानेके लिए तयार रहता था। इसके सामने मृत्युभय कोई भय न था। मृत्युसे भी अधिक भयानक कोई बात होती तो यह उसके लिए भी सदा तयार रहता था। भय क्या होता है इस बातका इसे ज्ञान न था। निजी स्वार्थको यह पहचानता न था। जिस समय आष्ट्रियोंके विरुद्ध इसने जातीय पताका खड़ी की, जिस समय यह वीर दुःखी देशभाइयोंके साथ बलवान दुर्दान्त अत्याचारी अष्ट्रियनोंके सामने कार्यक्षेत्रमें आया, उस समय इसका मुखमण्डल एक अलौकिक तेजसे प्रकाशित हुआ, इसके शरीरसे दिव्य ज्योति निकलने लगी, भविष्यवादियोंने कहा यह विजयज्योति है।

विलियम टेलका जन्म एक किसानके घर हुआ था। इसकी महत्ता, उदारता अनुपम थी। शत्रुओंके सामने सिर झुकानेकी अपेक्षा मर जाना इसे कबूल था। अपनी इस प्रकृतिका परिचय इसने अपने जीवन के कार्योंसे दिया।

यह लिखा जा चुका है कि उस समय आष्ट्रिया

वाले समस्त स्विटजर्लैण्डमें उत्पात मचाये हुए थे एक किसान खेतमें हल चला रहा था, वहां गवर्नरका एक नौकर आया और विना कारण उसने हलके दोनों बैल खोल दिये और कहने लगा कि हल जोतनेवालोंका काम तो यहांके वासियोंसे लेना चाहिए। यहा वाले तो हल खींचनेके लिए ही पैदा हुए हैं, इस असह्य अपमानको वह सह न सका, एक लाठी उठाकर उसने जड़ दी जिससे वह वहीं ढेर हो गया। उस किसानका जब क्रोध दूर हुआ तब वह परिणाम सोचकर व्याकुल हो गया। वह प्राण बचानेके लिये भाग गया। इस घटनासे आष्ट्रियनोंमें बड़ी हलचल मच गयी। आष्ट्रियन उसे ढूंढने लगे, पर उसका पता न मिला, तब वे लोग उसके बूढ़े पिताको पकड़ ले गये और उसकी दोनों आंखें उनलोगोंने फोड़ दी। विचारेके दुःखकी सीमा न रही। बेटा लापता हो ही चुका था, वृद्धावस्था थी, कुछ कामधाम कर ही नही सकता था, उसपर दोनों आंखे निकाल ली गयी, विचारा किसी प्रकार भीख मांगकर दिन बिताने लगा। इसी प्रकारके अत्याचार उन दिनों स्विटजर्लैण्डमें प्रायः हुआ करते थे और नगरवासी देखते तथा सहते थे। जब

उनकी सहनशीलताकी अवधि समाप्त हो चुकी तब उनलोगोने मिलकर एक बडी सभा की। उस सभामे आष्ट्रियनोंके अत्याचारोंसे रक्षा पानेका उपाय सोचा गया। लोगोंने विलियम टेलको अपना सेनापति बनाया। इस गुप्त समितिकी कई बैठकें हुई। वहांकी बातें गुप्त रखनेकी लोगोंने प्रतिज्ञा की। आष्ट्रियनोंके विरुद्ध युद्ध घोषणा करनेका एक दिन नियत हुआ, सभी तयार थे, सभी उस दिनकी प्रतीक्षा करते थे। पर भगवानको यह मजूर न था, वे भी स्विटजलैंण्डके निवासियोंकी स्वाधीनता चाहते थे, पर उस प्रकार नहीं। अतएव स्विटजलैंण्डवाले अपने निश्चयके अनुसार काम न कर सके। बात यह हुई कि उन्ही दिनों गवर्नर वहां आया और उसने अपनी टोपी एक पेड पर टांग दी और लोगोंको उसने हुक्म दिया कि घुटने टेक कर लोग उसको सलाम करें। गवर्नर अपने अधिकार-मदसे अन्धा हो चुका था अतएव वह मनुष्योको भेड समझता था। गवर्नरकी आज्ञा का पालन हुआ, पर विलियमटेलने साफ साफ उस आज्ञाके पालन करनेसे इन्कार किया। राजाके पुलिसमैन इन्हे पकड़ कर ले गये। गवर्नरने हुक्म

दिया कि तुम अपने बेटेके माथे पर सेव रख कर तीर से उसे छेदो ।:विलियम टेलने इसे स्वीकार कर लिया। विलियम टेल धनुर्विद्यामें बड़ा ही निपुण था। इसने वैसा ही किया। गवर्नरका मनोरथ पूरा नही हुआ, गवर्नर समझता था कि इस उपायसे यह अपने लड़केको मार देगा, अथवा हमारी आज्ञा न माननेके अपराधमे इसे और अधिक दण्ड देनेका अवसर मिलेगा, पर कुछ भी नही हुआ। टेलने तीरसे सेव छेद दिया और बेटेका शरीर अक्षत रहा। गवर्नरने देखा कि टेलके पास एक और तीर बचा है, इन्होंने पूछा तुम दो तीर क्यों लाये थे। इन्होने उत्तर दिया, यदि पहले तीरसे मेरे बेटेका कुछ अनिष्ट हो जाता तो इस दूसरे तीरसे मैं तुमको मारता। यह बात गवर्नरके क्रोध बढ़ानेके लिये काफी थी। उसने टेलको गिरफ्तार करनेकी आज्ञा दी। हथकड़ी बेड़ी लगाकर वह विलियमको एक नावपर ले गया, स्वयं भी वह उस नाव पर बैठा। वह चाहता था टेलको कुचनाच जेलखानेमें बन्द करें, उसी उद्देश्यसे नावपर बैठाकर वह उसे ले जाता था। रास्तेमे आंधी आयी, नाव डगमगाने लगी। टेल नाव चलानेकी विद्यामे बड़ा प्रवीण

है यह बात गवर्नर जानता था, उसने टेलकी हथकड़ी बेडियां खुलवा दीं। टेल नाव चलाने लगा। किनारेसे थोड़ी दूरपर नाव ले जाकर टेल नावसे कूदकर तीर पर आ गया। नाव बह गयी, गवर्नर साहब अपने साथियोंके साथ समुद्रमे डूब मरे। टेलके नगरमें आते ही वहांके वासी विद्रोही हो गये। आष्ट्रियन सेना परास्त हो गयी, स्विटजलैंण्डके किलेपर जातीय पताका फहराने लगी। टेलका कार्य समाप्त हुआ।

टेल गुणी था, साहसी था, स्विटजलैंण्डमें उस समय विदेशियोंका राज्य था। टेल यदि अपना कल्याण चाहता, यदि वह धन चाहता तो देशद्रोह करके अपना मनोरथ सिद्ध कर सकता था। कितने ही देश-द्रोही स्विस इस मार्गपर अग्रगामी हुए थे। टेलके लिये यह कोई नयी बात न होती। विदेशी गवर्नर टेलका बड़ा आदर करता यदि टेल अपनी विद्या, बुद्धि, साहस और बलको देशद्रोहमे लगाना स्वीकार कर लेता। पर उसने ऐसा करना उचित न समझा। अब टेलके लिए दूसरा मार्ग बचा रह गया, वह मार्ग था देशसेवाका, पर विकट था, वहाँ सांसारिक वासना-के सफलीभूत होनेकी आशा न थी। किसी भौतिक

पुरस्कारकी सम्भावना न थी. थी लांच्छना, थी मानसिक-वेदना, थी जलन। टेलने इसी मार्गको ग्रहण किया, उसका जीवन दुःखसे घिरा था. वह स्वयं दुःख भोगता रहा, पर वह समझता था अपनेको सुखी, जनता उसकी पूजा करती थी उसके जयजयकारसे आकाश मण्डल गुँजा देती थी। स्विटजर्लेण्डका प्रत्येक वासी उसका सम्मान करता था उसपर विश्वास करता था, और उसकी आज्ञाके अधीन अपनेको समर्पण कर देना अपना सौभाग्य समझता था। आज तक उसकी कीर्ति गायी जाती है, ऐतिहासिक उसके चरित्रका अनुशीलन करते हैं, और हृदयसे धन्यवाद देते हैं।

---

## गेरीवाल्डी

इटलीके नाइस नामके गाँवमें गेरीवाल्डीका जन्म हुआ था। १८०७ई० २२ जुलाईको इनका जन्म हुआ। उन दिनों इटली आष्ट्रीयाके चंगुलमें फँसा पराधीनताके बुरे फल भाग रहा था। जो लोग पराधीनताके कष्टोंके आदी हो गये थे, जिन लोगोंने आत्मा और

मनकी अपेक्षा शरीरको ही महत्व दिया था, वे लोग उसी पराधीनतामे सुखी थे। वे पिजड़ेकी चिड़ियाके समान मालिककी बोली बोल रहे थे, मालिककी बोली सीख रहे थे, बिना परिश्रमका दूसरेके हाथका मिला भोजन उनके सौभाग्यकी सूचना दे रहा था। पर जिनका खून नया था, जिनके खूनमें गति थी, जो नये नये इस पराधीनताके पिजड़ेमें आये थे, उनके लिए यह स्थिति असह्य थी। वे इस दशामें एकदिन भी रहना अपना और अपने देशका अपमान समझते थे। इस प्रकारके नये खून रखनेवालोंके प्रधान नेता गेरीवाल्डी थे। गेरीवाल्डीने जिस व्रतका अनुष्ठान प्रारम्भ किया या उसे पूरा किया था। इन्होंने देशकी पराधीनता दूर की थी।

गेरीवाल्डी दरिद्र माता पिताके पुत्र थे। अतः पिता माता इनकी शिक्षाकी व्यवस्था न कर सके। छोटी उमरमें ही गेरीवाल्डीको नौकरी करनी पड़ी। पहले पहल ये सार्डोनियाकी नौ-सेनामें भर्ती हुए। इनकी वीरता और साहसके कारण शीघ्र ही इनकी प्रसिद्धि हुई। पर गेरीवाल्डी नौकरी करनेके लिए नहीं आये थे। इनके हृदयमें अनुभव करनेकी शक्ति

और आंखोंमें देखनेकी ताकत थी। इस कारण शीघ्र ही इन्होंने इटलीकी दुरवस्थाका अनुभव किया। आष्ट्रियावाले इटलीको अपना गोदाम बना रहे थे। यह बात वहांके जवानोंको बुरी लगी। उन लोगोंने आष्ट्रियाके विरोधमें एक विद्रोह सभा खड़ी की। उस सभाका प्रधान स्थान जनेवामें नियत किया गया। उस सभाके सदस्य अपने काममें लगे। आष्ट्रियाके राजकर्मचारियोंको इस सभाकी बात मालूम हुई और उन लोगोंने सभाके सदस्योंको दण्ड दिया। गेरीवाल्डी पर भी उस सभामें सम्मिलित होनेका सन्देह किया गया और इन्हें दण्ड दिया गया। देश छोड़कर निकल जानेका गेरीवाल्डीको हुक्म मिला, पर गेरीवाल्डी भागकर फ्रांस चले गये।

वहींसे गेरीवाल्डीके कर्ममय जीवनका प्रारम्भ होता है। राजकर्मचारियोंकी दृष्टिसे अपनेको छिपानेके लिए इन्हें तरह तरहके प्रयत्न करने पड़े, अनेक रूप धारण करने पड़े। इस प्रकार इस वीरने अनेक कष्ट भोगे। अन्तमें यह मार्सेलीज़ पहुंचा और वहाँ एक गुप्तस्थान ढूंढ़कर वहीं रहने लगा। उस समय मेटासेनी भी वहीं रहते थे। दोनोंका उद्देश्य एक

था। गेरीवाल्डीने मेटासेनीको गुरु बनाया और ये तरुण इटलीदलके सदस्य बने। उस स्थानमे दो वर्ष-तक गेरीवाल्डीको अज्ञातरूपसे रहना पड़ा। इस अवसरमे उन्होंने गणित विज्ञान आदिका अच्छा अध्ययन कर लिया। पर वे अपना कार्य प्रारम्भ करनेके लिए व्याकुल थे, इसके लिए वे सुयोग ढूंढ़ते थे। कुछ सोच विचार कर उन्होंने मिसरदेशके एक जहाज पर नौकरी कर ली और ट्यूनिस पहुंचे। वहाँ उन्होने नौ-सेनामे नौकरी कर ली। इस स्थान-पर उनके कतिपय महीने बीत गये। जिस मनोरथको सफल करनेके लिए गेरीवाल्डीने नौकरी की थी उसकी कोई भी आशा उन्हे मालूम न हुई, अतएव उन्होंने यह स्थान छोड़ दिया। यहाँ से वे अमेरिकाके राईव-गेनिरो स्थानमे गये। यह प्रान्त प्रजातंत्रके अधीन था। गेरीवाल्डीने इसी प्रजातंत्रके अधीन सेनाकी एक नौकरी कर ली। "बूगेनस बयारेस" नामकी जातिसे उस प्रजातंत्रका युद्ध उपस्थित हुआ, प्रजातंत्र-की सेना गेरीवाल्डीको सेनापति बनाकर रणक्षेत्रमे गयी। गेरीवाल्डीकी वीरता, साहस, रणदक्षता देखकर लोगोंको आश्चर्य हुआ। थोड़े सैनिकोंको लेकर गेरी-

वाल्डी शत्रु-व्यूहमे घुस गये और शत्रु-सेनाको भस्म करके अक्षतदेह लौटकर आये। लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ। लोगोंने समझा कि वे किसी मंत्रसे सुरक्षित हैं। उस रणक्षेत्रमें गेरीवाल्डीके दो गुण प्रकाशित हुए थे। जिस प्रकार वहाँ इनकी वीरताकी प्रसिद्ध हुई उसी प्रकार इनकी दयालुताका भी लोगों-को ज्ञान हुआ। गेरीवाल्डीने अपने सैनिकोंको सख्त ताकीद कर दी थी कि शत्रुपक्षको अकारण तकलीफ न पहुंचायी जाय।

गेरीवाल्डीको इस विजयका संवाद सब जगह फैल गया। इटलीवालोंको भी यह बात मालूम हुई। इटलीवालोंने इनका अभिनन्दन किया। एक तलवार उपहारमें इन्हे दी जानेकी घोषणा हुई, पर यह उपहार ये ले न सके। उपहार लेनेके पहले ही इन्हें इटलीके जातीयदलमे सम्मिलित होना पड़ा। १८४८ ई० मे इटलीमें आष्ट्रियाके विरुद्ध बलवा हुआ। गेरीवाल्डी उस दलमे शामिल हुए। इन्होंने अपनी वीरतासे शत्रुदलको भयभीत कर दिया।

गेरीवाल्डीने इटलीके राजा चार्लस् अलबर्टकी सेनामें नौकरी चाही। इसके लिये उन्होंने प्रार्थना

भी की। पर भीरु राजा इनको रख न सके। उन्होंने स्वेच्छासेवकोंका दल सङ्गठित करनेकी आज्ञा दी। गेरीवाल्डीने राजा की आज्ञा मान ली, उन्होंने एक घोषणा प्रचारित की, स्वदेश प्रेमी नवयुवक उस दलमें आ आकर एकत्र होने लगे। थोड़े ही दिनोंमें एक अच्छी सेना हो गयी। गेरीवाल्डी उस सैनाके सेनापति हुए। कई युद्धोंमें उन्होंने उस जातीय सेनाका उपयोग इटलीके शत्रुओंके विरुद्ध किया और उनकी सेना विजयिनी हुई। पर अन्तमें उन्हें पराजित होना पड़ा। इस पराजयका कारण तो गेरीवाल्डीकी त्रुटि ही समझी जाती है; पर वह त्रुटि प्रत्यक्ष नहीं है। उनकी गलती यही है कि उन्होंने जातिद्रोहियोंको पहचाननेकी कोई उत्तम कसौटी नहीं बना रखी थी। पराधीन जातियोंमें क्षुद्र स्वार्थकी ममता बड़ी प्रबल हो जाती है। पराधीन जातियोंमें ऐसे नीचमना कुलांगार उत्पन्न हो जाते हैं जो अपने स्वार्थके लिये देश धर्म आदिको भी बेचनेके लिये तैयार रहते हैं। ऐसे ही विश्वासघाती नीचोंके कारण गेरीवाल्डीका पराजय हुआ।

गेरीवाल्डी पराजित हुए। इतने दिनोंका परिश्रम

एक विश्वासघातीके स्वार्थकी आगमें जलकर भस्म हो गया। गेरीवाल्डीने अपने सैनिकोंको घर जानेकी आज्ञा दे दी। स्वयं उन्होंने यूनाइटेड स्टेट्सकी यात्रा की। यहां आकर उन्होंने रोजगार करना प्रारम्भ किया, अपने काममें लगकर गेरीवाल्डी समयकी प्रतीक्षा करने लगे ; इसी समय पेरुमें युद्ध आरम्भ हुआ। पेरुकी सेनाके ये सेनापति बनाये गये। इस युद्धमें गेरीवाल्डीने जैसी चतुरता और सेना-सञ्चालन-निपुणता दिखायी उससे इनके प्रतिद्वन्द्वी भी मुग्ध हो गये। इनका यश चारो ओर फैल गया। युद्ध समाप्त होने पर वे पुनः अपने देशमें लौट आये और वहांके द्वीपमें अपने पुत्रोंके साथ पांच वर्षों तक निवास किया। गेरीवाल्डीका यहांका जीवन एकान्त जीवन था। वे चुपचाप बैठकर अपना समय नहीं बिताते थे। बिता भी नहीं सकते थे। उनके समान मनुष्योंके लिये "प्रकृतित्वां नियोक्ष्यति" वाली बात घटती है। उनमें कर्तृत्व शक्ति थी, वह चुपचाप नहीं रह सकते। वहां रहनेके समय उन्होंने खेती करना प्रारम्भ कर दिया। बहुत सी परती जमीन उन्होंने आबाद की। खूब

परिश्रम किया, काफी अन्न हुआ। थोड़े ही दिनोंमे उनके पास बहुत बड़ा अन्नका संग्रह तैयार हो गया। बाहर अन्न भेजनेके लिये उन्होंने एक जहाज तयार कराया। अवसरके अनुसार उसी जहाजपर चढ़कर वे "नाइस" नामक नगरमे अन्न ले जाते थे। इस आने जानेमे उनको एक बड़ा लाभ हुआ। अनेक लोगोंसे उनका परिचय हुआ, जिससे उनके गुणपक्ष-पाती मित्रोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी। उनका निष्क-पट जीवन हृदयकी स्वाभाविक और सुन्दर वृत्तिया, परिश्रम शीलता आदिको देखकर लोग उनमें भक्ति करने लगे, बहुतोंने उन्हे अपना आदर्श बनाया, कई उनके अनुयायी हो गये। गेरीवाल्डीका यह कार्यक्रम अनायास भारतीय युवकोंकी ओर ध्यान आकृष्ट करता है। असहयोगके पक्षपाती अनेक युवकोंने कालेज त्याग किया था। थोड़े ही दिनोंके बाद जब उनके लिए कोई काम न रह गया तब उनमें कइयोने माफी मांगली और कइयोंने नाम बदलकर पुनः कालेजमें प्रवेश किया, कई एक युनिव-र्सीटी छोड़कर दूसरीमे चले गये। यह सब क्यों हुआ। उत्तर मिला क्या करता काम नही चलता था।

लाचारी कालेजमे जाना पड़ा। पर गेरीवाल्डीके समय यह प्रश्न एक क्षणके लिए भी उपस्थित न हुआ कि क्या करें। समय अनुकूल देखा देशोद्धारका काम किया, नही तो स्वपरिश्रमसे कमाया खाया और खिलाया। उन्होंने किसीसे भी नहीं कहा था कि क्या करें, क्योंकि उनके सामने ऐसा प्रश्न हो ही नहीं सकता। इस भेदके मूल पर हम लोगोंको विचार करना चाहिए।

इटली निवासियोंको दासताकी वेड़ी असह्य हो गयी थी। वे उसे तोड़ना चाहते थे, हाथ पैर वंधे थे, केवल खुला था मन। पर मनके साध न वंधे हुए थे। इससे मन चुप रहनेवाला न था। वह जोर लगाता था, वंधे हाथ पैरोंमें कम्पन उत्पन्न करता था, उन्हे कार्यक्षेत्रमे लाकर खड़ा कर देता था। वे विपत्तियोंका सामना करते थे, उनपर प्रहार करते थे और उनका प्रहार सहते थे। शक्ति तो थोड़ी थी, साधन थे, पर निकम्मे वना दिये गये थे। इसीसे वे लगातार प्रयत्न नहीं कर पाते थे। आहत होकर—क्षीणबल होकर वैठ जाते थे। आंखें वन्द हो जाती थीं, चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखायी पड़ता था।

लाचारी थी, बैठना ही पड़ता था। प्रतिपक्षी समझते थे, चलो छुट्टी हुई, जो उफान आया था वह दब गया। उफान दब जाता था इसमें शक नहीं, पर वह दबना शक्ति सञ्चय करनेके लिए था, वह उफान का दबना थोड़ी देरके लिए था और गरमी पाकर पुनः उफ़नानेके लिए था। वह बैठना हिम्मत हारकर बैठना न था किन्तु विश्रामके लिए था। इतिहासके विद्यार्थियोंको इस बातका पूरा पूरा ज्ञान है।

इटलीके नवयुवकोंने फिर सिर उठाया। "चिरजीवी इटली, इटलीकी जय" आदि देशप्रेम सूचक और भाग्यवान मूर्दोंके भी शरीरमें शक्ति संचार करनेवाले मंत्रोंसे इटलीकी भूमि और आकाश प्रतिध्वनित हुए। वहांके नवयुवक उठ खड़े हुए, वे मातृभूमिके उद्धारके लिए आगे बढ़नेके लिए तयार हुए। युवकोंने पैर उठाया, आंखें इधर उधर फेरीं, पर उन्हें अपना सेनापति न दिखायी पड़ा। वह वीरताकी मूर्ति, देशप्रेमका प्रेमी, स्वदेशोद्धारका पथिक और मातृभूमिका सपूत दिखायी न पड़ा। वे खड़े हुए। उन्होंने एक स्वरसे कहा देशके सपूत गेरीवाल्डी जय! एक मूर्त्ति सामने आकर खड़ी हो गयी।

वह मूर्ति अद्भुत थी। उसमे वीरता थी, क्रूरता नहीं; कर्तृता थी अहंकार नहीं, देशप्रेम था स्वार्थ नही, त्याग था मानलिप्सा नहीं। देशके युवकोंने पुन एक बार जय जयकार किया। उस मूर्तिका सिर झुक गया अपने साथियोंके सामने, आंखें तर हो गयीं, भुजाएँ तन गयी छाती फूल गयी। थोड़ी ही देरमे उस मूर्तिने एक अद्भुत आकार धारण किया। लोगोंने देखा उसके सर्वाङ्गसे वीरताकी लपटें निकलने लगीं, वह मूर्ति अभी अभी अपने आश्रमसे दौड़ी दौड़ी आयी थी, लोगोंने देखा कि वह मूर्ति स्वाधीनता की बलिवेदी पर चढ़नेके लिए तयार है। लोगोंने समझा कि उसके हृदयमें न कोई वासना है और न स्वार्थ, वह न मानका भिखारी है और न धनका लोभी, लोगोंने समझा कि उसमें तर्क करनेकी शक्ति नहीं है, वह व्याख्यान देकर देशवासियोंके हृदयोंमें स्थान पानेका प्रयत्न करनेवाला नही है। उसमे किसी प्रकारकी कला नहीं है। यदि कुछ है तो केवल देश-प्रेम, और है देशप्रेम पर खुशी खुशी पुत्र स्त्री आदिके साथ कुर्बान हो जानेका अटल निश्चय।

उस वीर मूर्तिने अपने अनुयायियोंकी ओर देखा,

वह उनको साथ लेकर आगे बढ़ी। अपने अन्य भाइयोंको साथ लेने के लिए उसने एक घोषणापत्र निकाला। वह नीचे पढ़िए—

"भाइयो, आपलोग नया जीवन पाने के लिए बुलाये गये हैं। आशा है शत्रु के साथ युद्धमें आप पूर्वपुरुषोंका अनुकरण करेंगे। आप अपने कुलकी उज्वल कीर्तिसे रणक्षेत्रको आलोकित करेंगे। इस बार भी उसी शत्रु से सामना है, उसी घातक क्रूर डाकू आष्ट्रियावालोंका सामना करना है। आप के दूसरे भाइयोंने मिलकर प्रतिज्ञा की है कि या तो हम लोग अपने देशका—अपनी मातृभूमिका—उद्धार करेंगे या रणक्षेत्रमे प्राण दे देंगे। आइये, आप भी अपने भाइयों का साथ दीजिये, उनकी प्रतिज्ञाको, अपनाइये। देश बहुत दिनोंसे दासताकी बेड़ीमें जकड़ा हुआ अत्याचार और अपमान सह रहा है, आज उसका उद्धार करना है। आज जातीय साम्राज्यकी स्थापना करना है, उसकी विदेशी दासताका कलङ्क हटाना है। जातीय साम्राज्यको निष्कलङ्क और पवित्र बना कर अपने वंशजोंके हाथोंमें समर्पित करना है। समूची इटलीने राजर्षि विक्टर मेनुअलको अपना नेता माना

है। उन्हींके आदेशसे आज मैं आपकी सेवामे आया हूं। उनकी इच्छा है कि आप लोग जातीय-स्वाधीनताके युद्धमे कमर कसकर तयार हो जायं। उन्होंने कृपाकर जिस कार्यका भार मुझपर रखा है उसको सिद्ध करनेके लिये प्राणपणसे प्रयत्न करूंगा। आपके भाइयोंने और आपके नेताने जो मुझे जातीय सेनाका सेनापति बनाया है इसे मैं अपने गौरवकी बात समझता हूं। भाइयो, अब अधिक विलम्बकी आवश्यकता नहीं है, तलवार पकड़ लो, इटलीके स्वाधीन सूर्यको दासताके मेघने छिपा रखा है। आपके अस्त्र रूपी वायुसे वह मेघ शीघ्र ही छिन्न भिन्न हो जायगा। जो भाई अस्त्र ग्रहण करनेकी शक्ति रख कर भी अस्त्र ग्रहण न करेगा, वह देशद्रोही समझा जायगा, वह विश्वासघातक समझा जायगा और वह दण्डित होगा। जिस दिन बिखरे हुए इटलीके पुत्र और कन्याएं एक साथ मिलेंगे उसी दिन उनके पैरोंकी दासताकी बेड़ी सदाके लिये टूट जायगी। उसी दिन इटलीको पूर्व गौरव प्राप्त होगा। योरोपकी जातियोंमे इटलीको जो ऊंचा आसन एक दिन प्राप्त था वही उसे पुनः प्राप्त होगा।"

इस घोषणा पत्रने बिखरी हुई इटलीकी शक्तिको एकत्र कर दिया, उनका व्यक्तित्व देशके रूपमें लीन होगया। समस्त इटली आष्ट्रियनोंके विरुद्ध खड़ा हो गया। उनके विरुद्ध समस्त इटलीमे विद्रोहकी आग धधक उठी। युवकोंने अपने सेनापतिका साथ दिया। सेनापति आगे बढ़ा। इन देश प्रेमी वीरोंके सामने नौकरी करने वाले सैनिक कबतक ठहर सकते थे। उनके पैर उखड़ गये। मैदान गेरीबाल्डीके हाथ रहा। इटलीमें स्वाधीनताकी घोषणा हुई। देशी साम्राज्यकी स्थापना हुई। देशवासियोंकी इज्जत और प्राणोंका मूल्य हुआ। गेरीबाल्डी खेती करने चले गये। विक्टर मेनुअलने इन्हें ऊंचा पद देना चाहा, वृत्ति देनेकी इच्छा प्रकट की, पर इन्हें इनसे काम न था। इनके हृदयमे देशको पराधीन देखकर जो कसक होती थी वह मिट गयी, ये कृतार्थ हुए।

# स्वायत्त सुख दरिद्रता नहीं।

मैंने अपनी उद्देश्य-सिद्धिके लिए दरिद्रताका व्रत ग्रहण करनेवाले कई महानुभावोंका परिचय दिया है। पाठक जान सकेंगे, उन लोगोंने समय पड़ने पर दरिद्रता का व्रत ग्रहण किया है, जो ऊंचेसे ऊंचा पद पा सकते थे, जो संसार के मान-प्रतिष्ठा धन आदिके अधिकारी हो सकते थे, जो अगाध सम्पत्ति एकत्र कर सकते थे और करते थे, पर समय आया और उन्होंने सांसारिक मोह ममता छोड़ दी, वे गृहवासी रहने पर भी त्यागी हो गये। उन्होंने जान बूझकर दारिद्रय व्रतका अवलम्बन किया।

एक मनुष्यने कहा था कि देखिये ग्रहोंका कैसा फेर है। जो एक दिन राजाके समान थे, जिनके यहां एक दिन गवर्नर आते थे, आज वे कंगाल हैं, आज उनके हाथोंमें एक सिपाही हथकड़ी लगा रहा है। ग्रहोंका फेर क्या है यह तो मुझे मालूम नहीं, पर घटना सच है इसमें सन्देह नहीं। जो लोग इसे

ग्रहोंका फेर बतलाते हैं, दु:ख है उन्हें सुखकी परिभाषा का ज्ञान नहीं, दरिद्रताके स्वरूपका परिचय नहीं है। दरिद्र वह है जो हर तरह से असमर्थ हो, जो इतना अशक्त हो कि अपनी आवश्यकताएं आप पूरी न कर सकता हो। जो अपनी आवश्यकताओंका दास हो और उन्हे पूरी न कर सकनेके कारण सदा बिलबिलाता फिरे। पर हमारे दरिद्र ऐसे नहीं हैं, वे असमर्थ नहीं हैं। वे अद्‌भुत शक्तिमान हैं, उन्होंने अपनी शक्ति दूसरोंके कल्याणके लिए लगा दी है। वे अपनी आवश्यकताओंको आसानीसे पूरा करते थे। पर उनकी सुप्त आत्मा प्रवुद्ध हुई। उन्हें मालूम हुआ की मेरी असीम शक्ति केवल अपनी ही आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए नहीं है। इसके द्वारा मैं और भी कर सकता हूं, फिर मैं आहार निद्रा आदि साधारण कामोंमें अपना जीवन क्यों नष्ट करूँ। इस विचारको कार्यमें परिणत करनेके लिए उन्हें स्वयं योग्य बनने की आवश्यकता प्रतीत हुई। वह योग्यता केवल स्वायत्त सुखके अतिरिक्त दूसरी नहीं थी।

स्वायत्त और परायत्त भेदसे सुख दो प्रकारका माना गया है। अपने अधीनके सुखको स्वायत्त

सुख कहते हैं, और दूसरोंके द्वारा प्राप्त होनेवाला सुख परायत्त सुख है। जिस सुखके लिये दूसरोंकी अपेक्षा हो, दूसरोंकी कृपाकी आवश्यकता हो वह परायत्त सुख है। कुलीगिरीसे लेकर लाटगिरी तक के व्यवसायसे जो सुख प्राप्त होता है, वह परायत्त है। कुलीके लिए यह आवश्यक है कि रेलगाड़ीसे बाबू उतरें, उनके पास सामान अधिक हो, या वे अनजान हों। बिना सामानके कुली अपने पेशेमें सफल नहीं हो सकता। वकीलके लिये यह आवश्यक है कि खूब लड़ाई झगड़े हों। भाई भाईमें सिर फुड़ौवल हो, जमींदार और रैयत लड़ें। वकील साहब प्रातःकाल उठकर ऐसे ही लोगोंकी तलाशमें रहते हैं। वे मनही मन भगवानसे इस बातकी प्रार्थना करते होंगे कि भगवन्! दिनों दिन कलह बढ़े, जो कलह दूर करनेका प्रयत्न करे अवश्य ही वकील साहब उस पर आग बबूला हो जायंगे, उसे देशघातक सिद्ध करनेके लिये तर्क शास्त्र और धर्म शास्त्रके सब नियमोंको काममें लावेंगे। यही बात डाक्टर साहब की भी है। वे भी यही चाहते रहते होंगे कि देशमें बीमारी फैले। मैं जानता हूं इन्फ्लूएंजाके दिनोंमें

ऐसा अभागा कोई भी डाक्टर वैद्य न था जिसके यहां सोनेके जड़ाऊ गहने न बने हों। पर उसके तीसरे वर्ष जब देशमें महामारीका प्रकोप न रहा। मैंने एक वैद्यसे पूछा कहिये क्या हाल है? आपने बड़ी ही निराशा भरी आवाजमे कहा, क्या कहूं आज कल सूखा है, ऐसा बुरा समय कभी न आया। मुझे वैद्य डाक्टरोंकी नीयत पर विचार नहीं करना है। मैं केवल इतना वतलाना चाहता हूं कि इन सज्जनोंने अपनी बनावटी आवश्यकताएँ इतनी बढ़ा ली हैं कि उनकी पूर्ति बिना दूसरों की सहायताके हो ही नहीं सकती। अतएव सुलझे हुए मुकद्दमे को भी वकील बारिस्टर उलझा दिया करते हैं। डाक्टर वैद्य खांसीमें यक्ष्माके कीड़े देखने लगते हैं। इसी प्रकार धीरे धीरे वढ़ते वढ़ते लाट साहब तक चले जाइए, यही पराधीनता पाइएगा। सदा इनलोगोंको दूसरों का मुंह देखना पड़ता है, सदा इनको दूसरों के पराक्रम दूसरों की बुद्धिका सहारा लेनेके लिए विवश होना पड़ता है। ऐसी पराधीनता भोगनेवालेकी असीम शक्तियां भी ससीम हो जाती हैं। वे जो चाहें वह नहीं कर सकते हैं। आत्माकी ध्वनि उनके कानोंमें गूंजा करती है, पर वह गुंजार जंगलमें कोकिलके बोलनेके समान निरर्थक होता है, वे उसके अनुसार काम नहीं कर सकते। वे विवश हैं। उन लोगोंने अपने को अपनी आवश्यकताओंके हाथ बेंच दिया है।

आत्मा कहती है. यह काम बुरा है. पर मालिककी खुशी के लिए, ग्राहकोंको प्रसन्न करनेके लिए आत्माकी आवाजके विरुद्ध काम करना ही पड़ता है। ऐसी दशामें जो अपनी शक्तिओंके द्वारा बड़ा काम करना चाहते हैं उनके लिए आवश्यक है कि वे परायत्त सुखका त्याग करें। वे अपने पेटके लिए देशमें महामारीके आगमनकी आकांक्षा न प्रकट करें। बंगले बनानेके लिए भाई भाई को न लड़ावें।

जिन लोगोंने आत्माकी आवाज सुनी थी उनके ध्यानमें यह बात आ गयी कि इस मार्गका प्रधान कण्टक क्या है। संसारके सभी मनुष्य अपनी आत्माकी आज्ञाका पालन क्यों नहीं करते? क्यों वे अपना परलोक और इहलोक दोनों खराब करते हैं? उनके ध्यानमें बात आ गयी, उन्होंने समझ लिया कि परायत्त सुख ही इस मार्गका सबसे बड़ा विघ्न है। अतएव उन्होंने परायत्त सुखका त्याग किया। अपनी आवश्यकताएँ इतनी कम कर दीं, जिनकी पूर्तिके लिए दूसरोंके मुंह देखनेकी जरूरत न रही, जिनके लिए दूसरों के बल और बुद्धिका सहारा पाने की आवश्यकता जाती रही। उन्होंने स्वायत्त सुखको अपनाया। उनकी अवस्था बदल गयी, पहलेके समान चमक दमक जाती रही, शानो-शौकत मिट गयी, नौकर-चाकर बिदा कर दिये गये, मोटरें हटा दी गयीं, दुनियाने समझा ये गरीब हो गये। किसी ने कहा,

ग्रहका फेर है, किसी ने दिमागकी शिकायत की। पर उस दरिद्रके सामने किसीका सिर न उठ सका, क्योंकि उसने अपनी शक्तियोंको अनन्तकी ओर लगा दिया था। उसने दरिद्रता ग्रहणकी थी, दरिद्रोंके लिए, उसने अनाचार सहना पसन्द किया था, अत्याचार पीड़ितोंकी रक्षाके लिए। फिर उसके सामने कौन देख सकता है, उसकी योग्यता तक कौन पहुंच सकता है। कौन मूर्ख उसकी सफलताके विषयमें सन्दिहान हो सकता है। वह शास्त्र जाने चाहे न जाने, उसे वक्तृत्व कलाका ज्ञान हो या न हो, वह तर्कशास्त्र जानता हो या न हो, उसने राजनीतिका अध्ययन किया हो या न किया हो, पर वह सफल होगा क्योंकि उसने स्वायत्त सुखको अपनाया है, वह अनन्तकी ओर अग्रसर हुआ है।

मनुष्य अल्पका विरोधी है अनन्तका नहीं। जिसके भाग्य-खोटे होते हैं वह इस बात को भूल जाता है कि प्रत्येक मनुष्यमे अनन्तकी प्रभा प्रकाशित है, इस मनुष्यके विरुद्ध सोचना, आचरण करना अनन्तका विरोध करना है। ऐसी दशामे उस भूले हुए अत्याचारी मनुष्यको राह दिखाने की जरूरत होती है; क्योंकि वह अज्ञानी है अतएव दयाका पात्र है। दरिद्र व्रतधारी महापुरुष उसी पीड़कको उसी अत्याचारीको राह दिखाता है। अतएव वह पहले मनुष्य समाजसे अपनेको अलग कर लेता है, अनन्तकी ओर बढ़ता

है, अनन्तकी अलौकिक आभासे पहले स्वय प्रकाशित हो लेता है, पुनः वह उस जान समाजमें जाकर बैठ जाता है, जो अत्याचारसे पीड़ित है, जो बुरी तरह सताया गया है। अत्याचारी वहां पहुंचता है, अपना काम प्रारम्भ करता है, वह अपने सामने एक अद्भुत प्रकाश देखता है, चौंकजाता है और सावधान हो जाता है। वह उसी प्रकाशमें देखता है कि जिनपर मैं अत्याचार करता था वे भी मेरे ही समान प्राणी हैं। वह पापसे निवृत्त होता है, भाई भाई मिल जाते हैं। मनुष्यताको कलङ्कित करने वाले दृश्य आंखोंके ओझल हो जाते हैं। मनुष्यताकी मर्य्यादा स्थापित होती है। यही कारण है कि जान बूझकर दरिद्र बनने वालोंका संसारमें अनादर नहीं होता है। वे स्वायत्त सुखी हैं, दरिद्र नहीं। वे अनन्तके उपासक हैं, संसारमें बन्धु हैं।

राजा दुर्योधन संसारका भक्त था। वह इस बातको भूल गया था कि मुझे संसारमें राजा होकर थोड़े ही दिनों रहना है, वह इस बातको जानता था कि यह अगाध सम्पत्ति मेरे भोग करनेसे अधिक है, वह यह भी जानता था कि पाण्डवोंका भी हक है। दूसरोंके हकपर अधिकार करनेका मुझे कोई अधिकार नहीं। पर वह अनन्तको भूल गया था। वह समझता था कि मुझे ही सब संसारका भोग करनेका अधिकार है, कैसर विलियम भी यही कहते

थे। युधिष्ठिर आदि ने दारिद्र्य व्रत ग्रहण किया, कृष्ण ने राज्य पहले ही से छोड़ा था। हाथमे आया राज्य उन्होंने उग्रसेनको दे दिया था। वे पराधीन होना नही चाहते थे, वे स्वायत्त सुख चाहते थे। उन्होंने अपने साथी पाण्डवोंको भी राजाज्ञा माननेका उपदेश दिया। वीर पाण्डव इच्छा करते ही शत्रुओंका सामना कर सकते थे, पर संसारके सामने वैसा करने से मनुष्यत्वका आदर्श न दिखायी पड़ता। अतएव उन लोगोंने कष्ट उठाये, जङ्गल जङ्गल मारे फिरे, जितने वैध उपाय थे उन सबका अवलम्बन किया। पर हठी दुर्योधन रास्ते पर न आया। अन्तमें उन लोगोंको युद्ध करना पड़ा। दरिद्रोंका दल विजयी हुआ। मनुष्यत्वकी मर्यादा स्थापित हुई।

समय समय पर ऐसे दरिद्रोंकी देशको आवश्यकता हुआ करती है, विलासितामें चूर होकर कर्म अकर्म सब करनेवाले देशको एक पथ प्रदर्शककी जरूरत होती है, एक ऐसे आदमीकी जरूरत होती है जो उन्हें राह बतावे, और देशकी जनता उनका अनुकरण करे। ऐसे ही दरिद्रोंके अनुसरण करनेसे कोई भी देश सुखी होता है, पराधीनतासे मुक्त होता है। देहकी स्वाधीनताके लिये आत्माको पराधीन बनानेवालोंको होश होता है, और वे अपना कर्त्तव्य